

मास्टर ऑफ आर्ट्स (संस्कृत साहित्य) एम. ए. (संस्कृत साहित्य)

अन्तिम वर्ष

कालिदास

(चतुर्थ प्रश्न पत्र)



दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय
चित्रकूट, सतना (म.प्र.) - 485334

संस्करण—2016—17

प्रेरणा एवं मार्गदर्शन :

प्रो. नरेश चन्द्र गौतम

कुलपति

महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

लेखक :

डॉ. तुलसीदास परौहा

एसो. प्रोफेसर, संस्कृत विभाग

महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक विश्वविद्यालय,

उज्जैन (म.प्र.)

संपादक :

डॉ. प्रज्ञा मिश्रा

एसो. प्रोफेसर, संस्कृत विभाग

महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय,

चित्रकूट (म.प्र.) 485 331

सम्पर्क सूत्र :

निदेशक, दूरवर्ती शिक्षा

दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र

महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

दूरभाष— 07670—265460, इ—मेल— distance.gramodaya@gmail.com, website: www.mgcvchitrakoot.com

प्रकाशक :

कुलसचिव

महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

कापीराइट © : महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

आभार : यह अध्ययन सामग्री संबंधित पाठ्यक्रम और विषय के लिए विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई है। अध्ययन सामग्री को सरल, सुरक्षित और बोधगम्य बनाने की दृष्टि से अनेक स्रोतों से प्रेरणा, संदर्भ और सामग्री ली गई है। सभी के प्रति आभार। अध्ययन सामग्री में व्यक्त विचार लेखक के अपने हैं। विश्वविद्यालय का इससे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

संदेश

महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय की स्थापना मध्यप्रदेश शासन द्वारा एक पृथक अधिनियम से 1991 में सुप्रसिद्ध समाजसेवी पद्मविभूषण नानाजी देशमुख के प्रेरणा और प्रयासों से चित्रकूट में मंदाकिनी के तट पर हुई। विश्वविद्यालय का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण विकास के लिए आवश्यक मानव संसाधन तैयार करना है। विगत 25 वर्षों की समर्पित सेवाओं में विश्वविद्यालय ने ज्ञान-विज्ञान के विविध आयामों पर अपने शिक्षा, शोध, प्रशिक्षण और प्रसार कार्यों से छाप छोड़ी है।



ग्रामीण क्षेत्र में संसाधनों के अभाव तथा सामाजिक-पारिवारिक परिस्थितियों के कारण निरंतरता से अध्ययन करने में बाधाएँ आती हैं। विश्वविद्यालय ने इस समस्या के समाधान के लिए गुणवत्तायुक्त दूरवर्ती शिक्षा को प्रत्येक ग्रामीण के घर-आँगन तक पहुँचाने का संकल्प लिया है। विश्वविद्यालय का दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सतत प्रयत्नशील है।

मुझे प्रसन्नता है कि दूरवर्ती शिक्षा के विद्यार्थियों को स्वनिर्देशित अध्ययन सामग्री मुद्रित और व्यवस्थित रूप में पहुँचाये जाने का यह प्रयास न सिर्फ दूरवर्ती शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ायेगा बल्कि छात्रों को गहराई से अध्ययन करने की दिशा में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।



प्रो. नरेश चन्द्र गौतम
कुलपति

कालिदास

यूनिट-1 : कालिदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से प्रश्न

यूनिट-2 : मालविकाग्निमित्रम् तथा विक्रमोर्वशीयम् से सम्बन्धित प्रश्न

यूनिट-3 : अभिज्ञानशाकुन्तलम् से सम्बन्धित प्रश्न

यूनिट-4 : ऋतुसंहार एवं मेघदूत से सम्बन्धित प्रश्न

यूनिट-5 : कुमारसम्यवम् एवं रघुवंशमहाकाव्यम् से सम्बन्धित प्रश्न

यूनिट-1

कालिदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से प्रश्न

उद्देश्य :

NOTES

कालिदास प्रकृति के कवि हैं। उनके काव्यों में काव्यगत वैशिष्ट्य तो चरम पर हैं ही उनकी प्रकृति के साथ मानव की संवेदनात्मक परस्पर पूरकता मयी एक वृहद् समष्टि की अवधारणा आज के लिए अत्यन्त प्रासंगिक है।

पर्यावरण के घटक तत्वों के प्रदूषित होने की स्थिति में आज उसके संरक्षण तथा विकास के लिए किए जा रहे कार्यों द्वारा उसका सम्पूर्ण समाधान कथमपि सम्भव नहीं है।

कालिदास के काव्यों में उन नैतिक मूल्यों, संवेदनापरक अनुभूतियों तथा पर्यावरण संरक्षण की दिशा में अत्यन्त सहायक वृक्षों एवं लताओं की जो मार्मिक एवं पूरकतापूर्ण सामन्जस्य की विवेचना मिलती है, वह आज के यबहृदय भौतिक विकासवाद की अंधी दौड़ में प्रकृति एवं पर्यावरण के शीर्षक मानव को संवेदनशील तथा जागरूक बनाने के लिए आवश्यक है।

कालिदास का व्यक्तित्व अत्यन्त सामान्य जीवन से विश्वस्तरीय अतुल्य जीवन को प्राप्त करने की कुंजी है। उनका कृतित्व भाषा, शैली, अलंकार, रस एवं विषय वस्तु की उत्तम ग्राह्यता को हर आयु वर्ग के व्यक्ति के लिए आदर्श हैं।

महाकवि कालिदास का जीवन वृत्त तथा उनकी कृतियाँ :

भारतीय साहित्योत्थान के अभिराम कल्पतरु विश्वबन्ध महाकवि कालिदास का जीवनवृत्त तथा उनका काल निर्णय भारतीय इतिहास की उलझी हुई समस्याओं में से एक है। यद्यपि इस प्रश्न पर एक शताब्दी से भी अधिक पाश्चात्य और पौरस्त्य विद्वान् विचार करते रहे हैं। महा कवि की ख्याति जितनी निश्चित है काल निरूपण उतना ही अनिश्चित। महा कवि की अनिश्चयात्मक भाषा के आधार पर कोई मत स्थिर करना असम्भव है। पुनरपि कतिपय प्रमाणों का आर्ष मानकर महाकवि के काल निर्णय की भित्ति स्थापित करने में सफल हो सके हैं। भारतीय जनश्रुति के आधार पर महाकवि कालिदास क्षपण कामरसिंह विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे—

धन्वन्तरि क्षपणाकामर सिंह शंकु –

वेतालभट्टघटकपर्प कालिदासाः ।

ख्यातो वाराहनिहिरो नृपतेः समायां

ग्लानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥

(ज्योर्विदाभरण—वारामिहिर)

महाकवि ने स्वयं अपने विषय में कुछ नहीं लिखा है। अतः उनके विषय में अनेक किम्बदन्ती चल पड़ी। जिसमें एक किम्बदन्ती के अनुसार वह महामूर्ख थे। उनका विवाह एक सुयोग्य और कला प्रवीण राजकुमारी से हुआ। पत्नी द्वारा अप्रभावित होने पर उन्होंने काली की उपासना की और उसके वरदान से उन्हें कवित्वशक्ति प्राप्त हुई। घर लौटने पर उन्होंने पत्नी से कहा— अनावृतकथाएं द्वार देहि। पत्नी ने उत्तर दिया— अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः। कालिदास ने इसमें से तीन शब्दों को लेकर तीन काव्य ग्रन्थ बनाये। अस्ति से कुमार सम्भव, अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा० (1.1) कश्चित् से मेघदूत कश्चित्कान्ता विरह गुरुणा० (1-1) वागू से रघुवंश, वागर्थाविव सम्पृक्तां (1-1) अन्य कथा के अनुसार उनका सम्बन्ध लंका के राजा कुमारदास (500 ई.) से बताया जाता है। वहां पर एक वेश्या ने धन के लोभ में उनकी मृत्यु कराई। इसके अनुसार उनका देहान्त लंका में हुआ। तीसरी कथा के अनुसार वह विक्रम संवत् के संस्थापक राजा विक्रमादित्य के नवरत्नों में माने जाते हैं। चौथी कथा के अनुसार वह राजा भोज (1005-1054 ई.) के आश्रित कवि माने जाते हैं। वस्तुतः धार के राजा भोज का आश्रित कवि परिमल था। इसका दूसरा नाम अहमगुप्त था। उसकी सुन्दरी शैली कालिदास से मिलती-जुलती थी, अतः उस कालिदास या परिमल कालिदास उपाधि दी गई थी। भ्रमवश परिमल का वास्तविक कालिदास समझ लिया गया।

कालिदास के जन्म स्थान के विषय में भी पर्याप्त विवाद है। काश्मीर के विद्वान उनको काश्मीरी सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। बंगाल के विद्वान् बंगाली और उज्जैन के विद्वान् उज्जयिनी निवासी। कालिदास ने मेघदूत में जो उज्जयिनी के प्रति विशेष आग्रह और आदर भाव प्रदर्शित किया है, उससे यह स्पष्ट है कि वह

उज्जयिनी निवासी थे। इन्होंने मेघदूत में उज्जयिनी नगरी के सौन्दर्य का, क्षिप्रा नदी का और महाकाल के मन्दिर का विशेष भावुकता के साथ वर्णन किया है।

कालिदास के ग्रन्थों को देखने से यह भी ज्ञात होता है कि वे जन्मना ब्राह्मण थे और शिवभक्त थे। अन्य देवताओं के प्रति भी उनका आदर भाव था। मेघदूत और रघुवंश के वर्णनों से ज्ञात होता है कि इन्होंने भारतवर्ष की विस्तृत यात्रा की थी। अतएव उनके भौगोलिक वर्णन सत्य, स्वाभाविक और मनोरम हुए हैं। उनका जीवन भौतिक दृष्टि से सुखमय था। उन्हें आर्थिक कष्ट नहीं था। अतएव उन्होंने धनहीनता, दारिद्र्य आदि के कष्टों का वर्णन नहीं किया है। उनका राजपरिवारों के साथ सम्बन्ध था। अतः उन्हें राज द्वारों राजकीय जीवन आदि का विस्तृत ज्ञान प्राप्त था। उन्हें अपने जीवनकाल में भी पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त हुई थी। उन्होंने स्त्री सौन्दर्य का वर्णन किया है, परन्तु वे कामुकता और विषय-वासनामय जीवन का श्रेयस्कर नहीं मानते—

“अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम्” (शाकुन्त. अंक 5 वाक्य 36)

उनके ग्रन्थों को देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने वेदों, दर्शनों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, गीता, पुराणों, आयुर्वेद, धनुर्वेद, संगीतशास्त्र, ज्योतिष, व्याकरण, छन्दःशास्त्र, काव्यशास्त्र आदि का गम्भीर अध्ययन किया था।

काव्य जगत में कालिदास की असाधारण प्रसिद्धि के कारण बाद में उनका नाम एक उपाधि के रूप में हो गया। जिस प्रकार आजकल शंकराचार्य नाम उपाधि के रूप में है और चारों मठों के अध्यक्ष शंकराचार्य कहे जाते हैं। उसी प्रकार बाद में जो सुयोग्य राजकवि हुए। उन्हें राजा के द्वारा कालिदास की उपाधि प्राप्त हुई या उन्होंने अपना उपनाम ही कालिदास रख लिया। परिणामस्वरूप अनेक कालिदास हो गये, और उनकी रचनायें भी कालिदासकृत कही जाने लगीं। राजशेखर का ऐसे तीन कालिदासों का ज्ञान था। अतएव उसने कहा है—

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।

श्रंगारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु॥

कालिदास के नाम से 41 रचनायें प्रचलित हैं। परन्तु इनमें से निम्नलिखित रचनायें ही वास्तविक रचनायें मानी जाती हैं। नाट्यशास्त्र— (1) अभिज्ञान-शाकुन्तलम्, (2) विक्रमोर्वशीयम्, (3) मालविकाग्नि नित्रम्। काव्यग्रन्थ— (1) रघुवंश महाकाव्यम्,

(2) कुमारसम्भवम् । गीति काव्य— (1) मेघदूतम्, (2) ऋतुसंहारम् । प्रथम 6 ग्रन्थों को सभी विद्वान् कालिदास की कृति मानते हैं। सातवें ग्रन्थ ऋतुसंहारम् के विषय में विद्वानों में विवाद है। कुछ इनको कालिदास की कृति मानते हैं कुछ नहीं। मेरे विचार से ऋतुसंहार को कालिदास की कृति मानना उचित है। यह उनकी अप्रौढ़ावस्था की कृति होगी। अतः इसमें उतनी प्रौढ़ता और भावों का उत्कर्ष नहीं है। इन सात के अतिरिक्त कालिदास के नाम से प्रचलित अन्य कृतियों अन्य विद्वानों की समझनी चाहिये।

अन्य रचनाओं में उल्लेखनीय कृतियों में हैं—

(1) कालीस्तोत्रम् (2) गंगाष्टकम् (3) ज्योतिर्विदाभरणम् (4) राक्षस काव्यम् (5) श्रुतबोधः। कालिदास की रचनाओं को कालक्रम के अनुसार इस क्रम में रखा जा सकता है। नाटक— मालविकाग्नि मित्रम् (2) विक्रमोवंशीयम् (3) शाकुन्तलम्, काव्यग्रन्थ (4) ऋतुसंहारम् (5) कुमारसम्भवम् (6) मेघदूतम् (7) रघुवंश महाकाव्यम्। मिश्रित रूप से रखने पर इनका क्रम यह होगा— (1) ऋतुसंहारम् (2) कुमारसम्भवम् (3) मालविकाग्नि मित्रम् (4) विक्रमोवंशीयम् (5) मेघदूत (6) रघुवंश महाकाव्यम् (7) अभिज्ञान शाकुन्तलम्।

महाकवि कालिदास का काल—

चूंकि कालिदास जी ने अपने रचनाग्रन्थों में अपने विषय में किसी भी बात का उल्लेख नहीं किया है, अतः उनके समय का निर्णय भी विद्वानों के लिए विवाद का विषय बना हुआ है। अतिपुष्ट और असंदिग्ध प्रमाणों के अभाव के कारण कालिदास के समय के विषय में जो मत प्रस्तुत किये गये हैं, वे पूर्णरूप से निर्णायक नहीं हैं। प्रस्तुत किये गये मत अधिकांशतः अनुमान, कल्पना और जनश्रुतियों पर आश्रित हैं। अतः नीचे विभिन्न मतों पर विचार करके जो मन्तव्य पक्ष बताया गया है, उससे यह भी समझना चाहिये कि यह मत अधिक युक्ति संगत और प्रामाणिक प्रतीत होता है।

कालिदास के समय के विषय में जो मत प्रस्तुत किये गये हैं उनमें से दो मत मुख्य रूप से प्रचलित हैं— (1) प्रथम शताब्दी ई.पू. का मत, (2) चतुर्थ शताब्दी ई. या गुप्तकालीन मत। प्रथम मत के अनुसार कालिदास विक्रम संवत् के प्रवर्तक उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे। द्वितीय मत के अनुसार कालिदास विक्रमादित्य उपाधिकारीह चन्द्रगुप्त द्वितीय (375–413 ई.) के आश्रित कवि थे। प्रथम

मत को अधिकांश भारतीय विद्वान् मानते हैं और द्वितीय मत को अधिकांश विदेशीय विद्वान् मानते हैं। इन दोनों मतों पर विचार करने से पूर्व कालिदास की पूर्व सीमा और अपरसीमा को समझ लेना आवश्यक है।

कालिदास ने माविकाग्निमित्र में शुंगवंशी राजा अग्निमित्र को नाटक का नायक बनाया गया है। वह मौर्यवंश का उच्छेद करके साम्राज्य को छीन लेने वाले सेनापति पुण्यमित्र का पुत्र था। उसका समय लगभग 150 ई. पू. माना जाता है। अतः कालिदास का समय 150 ई. पू. से पूर्व नहीं माना जा सकता है। कालिदास की अपरसीमा का निर्धारण वाणकृत हर्षचरित की भूमिका में प्राप्त उसकी प्रशस्ति से होता है। बाण ने भूमिका के श्लोक 16 में लिखा है –

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिष्क ।

प्रीतिर्मधुर सान्द्रासु मंजरीण्विव जायते ॥

बाण सम्राट हर्ष (606–647 ई.) का आश्रित कवि था। बाण के द्वारा कालिदास का उल्लेख होने से वह 606 ई. से पूर्व होना चाहिये। पुलकेशी द्वितीय के आश्रित कवि रविकीर्ति के दक्षिण भारत के 'एहोल' नामक ग्राम में प्राप्त शिलालेख में कालिदास का उल्लेख है। इसमें रविकीर्ति अपने आपको कालिदास और भारवि जैसा महाकवि बताता है।

येनायोजि नवेऽपूमस्थिर मर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्य ।

स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रित कालिदास भारवि कीर्तिः ॥

यह भी कालिदास की अपरसीमा छठी शताब्दी से पूर्व सिद्ध करता है। मन्दसोर के शिलालेख पर ध्यान देने से कालिदास की अपरसीमा 473 ई. से पूर्व सिद्ध होती है। यह शिलालेख कवि वत्सभट्टि कृत है। जुलाहों के संघ ने दशपुर (वर्तमान दसोर या मन्दसोर) में स्थित सूर्यमन्दिर का जीर्णोद्धार किया था। उसी की प्रशस्ति में यह शिलालेख है। यह शिलालेख 433 ई. का है। इसके निम्नलिखित पद्यों में मेघदूत और ऋतुसंहार की छाया दृष्टिगोचर होती है—

चलत्पताकान्यबलासनाथान्यत्यर्थ शुक्लान्यधिकोन्नतानि ।

तडिल्लताचित्रसिताभ्र कूट तुल्यो पमानानि ग्रहाणि यत्र ॥

(वत्सभट्टि-10)

विद्युलन्तं ललितवनितः सेन्द्रचापं सचित्राः

संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम् ।

अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गयकांलिहाग्राः

प्रासादास्त्यो तुलयितुभले यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥

(मेघदूत-66)

स्मरवश गततरुणजन बल्लभाङ्गना विपुलकान्तपीनोरु

स्तनजघन घनालिङ्ग न निर्भत्सित तुहि न हिमपाते ॥

(वत्समट्ट-33)

पयोधैरः कुकुमरागक्षपिञ्जरेः

सुखोप सेव्यैर्नव यौवनोष्यभिः ।

विलासनीभिः परिपीडितोरसः

स्वपत्ति शीतं परिभूय कामिनः ॥

(ऋतुसंहारम् 5-9)

पूर्वोक्त श्लोकों में कालिदास का अनुकरण स्पष्ट है। अतः वह 472 ई. से पूर्व हुआ है।

विक्रमादित्य का आश्रित कवि—

पाश्चात्य और पौरत्स्य विद्वान् सभी इस बात को स्वीकार करते हैं कि कालिदास विक्रमादित्य का आश्रित कवि था। इसके मुख्य कारण ये हैं— (1) भारतीय अनुश्रुति कि वह विक्रमादित्य के नवरत्नों में था। (2) ज्योतिर्निदाभरण (22-10) का श्लोक—

धन्वन्तरिक्षपणकामदसिंहशङ्कु

वेतालभट्ट घटकर्पर कालिदासाः ।

ख्यातो वराहभिहिरो नृपतेः सभायां

रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥

(3) विक्रमादित्य के स्मृत्पर्थ विक्रमोर्वशीय में नाटक के नायक पुरुरवा के स्थान पर विक्रम नाम। (4) विक्रमोर्वशीय में से स्थलों पर सहेतुक विक्रम शब्द का प्रयोग। (क) दिष्ट्या महेन्द्रोपकार पर्याप्तेन विक्रमामहिमा वर्धते भवान्। (अंक-1) (ख) अनुत्संकः खलु विक्रमार्लकार (अंक-1)

NOTES

विवाद इस विषय पर है कि यह विक्रमादित्य कौन सा व्यक्ति है। चन्द्रगुप्त द्वितीय को विक्रमादित्य मानकर कालिदास का समय चतुर्थ शताब्दी जो माना जाता है, उसका यहां पहले विवेचन है।

चतुर्थ शताब्दी या गुप्तकालीन मत —

इस मत के समर्थन में जो युक्तियां दी जाती हैं, उनका यहां पर संक्षिप्त विवेचन है—

(1) चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य — (क) पाश्चात्य तथा कतिपय भारतीयों ने यह स्वीकार करने पर कि कालिदास विक्रमादित्य का आश्रित कवि था, विक्रमादित्य का अन्वेषण प्रारंभ किया। उनके अनुसार चन्द्रगुप्त द्वितीय ने विक्रमादित्य उपाधि धारण की। वही प्रथम विक्रमादित्य है। चन्द्रगुप्त द्वितीय का राज्यकाल 375 से 413 ई. है। उसने अपने से पूर्व प्रचलित मालव संवत् को अपना नाम विक्रम लगाकर विक्रम संवत् नाम से प्रचलित किया। (ग) उसने मालवा, गुजरात और काठियावाड़ के शंकवंशी क्षत्रियों पर 390 ई. में विजय प्राप्त की। अतः उसे शकारि कह सकते हैं।

(क) चन्द्रगुप्त ही प्रथम विक्रमादित्य है, यह कथन प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में भी विक्रमादित्य का होना साहित्यिक प्रमाणों से सिद्ध है। वह शकारि था। उसका व्यक्तिगत नाम विक्रमादित्य था। वह उज्जैन का राजा था। उसने ही शकों पर विजय के उपलक्ष्य में विक्रम संवत् चलाया था। इसके विषय में अग्र लिखित विवेचन द्रष्टव्य है—

(ख) चन्द्रगुप्त द्वितीय ने मालव संवत् को विक्रम संवत् नाम दिया और चलाया। इस विषय में मुख्य आक्षेप ये हैं— (1) चन्द्रगुप्त द्वितीय ने शकार्वशी क्षत्रियों पर विजय के उपलक्ष्य में यह कार्य किया होता तो वह एक सम्राट होने के नाते कारण स्वयं अपना एक नया संवत् चलाता। नया संवत् चलाने से ही उसका महत्व प्रकट होता। (2) दूसरे के चलाये हुए संवत् को अपने नाम से चलाना उसकी हीनता

का द्योतक है और स्वाभिमानी के लिए अपमान जनक भी है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि वह नया संवत् चलाने का साहस नहीं कर सका था। दूसरे के संवत् की चोरी करके अपना नाम चलाना चाहता था। (3) चन्द्रगुप्त द्वितीय के पितामह चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने राज्याभिषेक के अवसर पर 320 ई. में गुप्त संवत् प्रचारित किया था। क्या उसके पौत्र के लिए यह उचित था कि वह पितामह के संवत् को छोड़कर नया संवत् और वह भी दूसरे का चुराया हुआ संवत् चलाते ? (4) क्या वह अपने पितामह के प्रति कृतघ्न था कि ऐसा कार्य करे जो पितामह के लिए अनादर सूचक हो। (5) यदि उसने यह संवत् चलाया होता तो उसके पुत्र-पौत्रादि इसी संवत् का अपनाते। परन्तु बाद में किसी गुप्त राजा ने विक्रम संवत् को नहीं अपनाया है। स्कन्दगुप्त के गिरिनार वाले शिलालेख में गुप्त संवत् का ही उल्लेख है, विक्रम संवत् का नहीं। (गुप्त काले गणनां निधाय) विक्रम संवत् का सर्वप्रथम उल्लेख नवम शताब्दी में मिलता है। इससे सिद्ध होता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय किसी भी अवस्था में विक्रम संवत् का प्रवर्तक नहीं है।

(ग) चन्द्रगुप्त द्वितीय ही शकारि हो, ऐसी बात नहीं है। शक ई. पू. प्रथम शताब्दी में भारत वर्ष में घोर आक्रमणकारी के रूप में आ चुके थे। प्रथम शताब्दी ई. पू. में पश्चिमी पंजाब में प्रथम शक राजा भवेज था। उसके सिक्कों और शिलालेखों से ज्ञात होता है कि वह प्रथम शताब्दी ई. पू. प्रथम शताब्दी में शक बड़ी ही निर्दयता से अपने राज्य का विस्तार कर रहे थे। उसका कथन है कि अम्लात नामक शक राजा ने पाटलिपुत्र पर आक्रमण किया और नगर पर पूरा अधिकार कर लिया, वहां के लोगों का सर्वनाश किया और शकों को वहां लाकर बसाया। शको के भीषण आक्रमण का हृदयविदारक वर्णन गर्गाचार्य ने किया है कि— इस भयंकर युद्ध में राष्ट्र के सब पुरुष मारे गये। इस कारण स्त्रियों को ही सब काम करने पड़े। उन्होंने भूमि जोती और धनुष-वाण लेकर खेतों की रक्षा की। जहां तहां स्त्रियों ने संगठन करके संघ स्थापित किये। पुरुष इतने दुर्लभ हो गये कि एक पुरुष को दस-दस, बीस-बीस स्त्रियां वरण करने लगीं। ग्रामों और नगरों में स्त्रियां ही सब व्यवस्था देखने लगीं। चातुर्वर्ण्य मर्यादा भंग हो चुकी थी।

उपर्युक्त वर्णन की सत्यता का अनुमान गत महायुद्ध के वर्णनों से किया जा सकता है। इससे यह भी अनुमान किया जा सकता है कि शकों को हराना ई.पू.

प्रथम शताब्दी में कितना महत्वपूर्ण कार्य समझा गया होगा। 56 ई.पू. प्रथम शताब्दी में शक विजय के उपलक्ष्य में जो सम्वत् चलाया गया, वह उस समय की अति महत्वपूर्ण घटना होगी। गर्गाचार्य के शब्दों में जो संघ स्थापित किये गये, उनमें मालवों का भी संघ होगा। यह सम्भव है कि शक मालवा में पराजित होने के कारण पीछे हटे और अन्ततः भारत के पश्चिमोत्तर भाग में भवेज के राज्य में रहे। इससे सिद्ध होता है कि शक विजय का महत्व ई.पू. प्रथम शताब्दी में अधिक था और उसी की स्मृति में सम्वत् चलाया गया, जो कि उज्जैन के राजा विक्रमादित्य के नाम पर विक्रम संवत् हुआ।

(घ) चन्द्रगुप्त द्वितीय को विक्रम संवत् का प्रवर्तक मानने में कुछ और आपत्तियां ये हैं— (1) किसी भी गुप्त राजा का नाम विक्रमादित्य नहीं है, अपितु यह चन्द्रगुप्त द्वितीय और स्कन्दगुप्त की उपाधि मात्र रही है। (2) सम्वत् जैसे मुख्य कार्य अपने नाम पर चलाये जाते हैं, न कि उपाधि पद। जैसे चन्द्रगुप्त प्रथम का गुप्त सम्वत्, ईसा का ईसवीय सन् आदि। (3) उपाधि के लिए आवश्यक है कि उस नाम का कोई व्यक्ति हुआ हो। तत्समता के सूचनार्थ वह नाम अपनाया जाता है। जैसे रोम के राजा सीजर के आधार पर अन्य सीजर राजा कैसर, जाद आदि नाम। इस बात की पुष्टि इस कारण से भी होती है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमारगुप्त ने अपनी उपाधि महेन्द्रादित्य रखी। ई.पू. प्रथम शताब्दी वाले विक्रमादित्य के पिता का नाम महेन्द्रादित्य था। कुमार गुप्त ने अपने महत्व को अधिक सूचित करने के लिए महेन्द्रादित्य उपाधि धारण की। स्कन्दगुप्त ने पुनः विक्रमादित्य उपाधि धारण की और प्रथम ई.पू. के पिता-पुत्र के सम्बन्ध को उसी रूप में स्वीकार किया। विक्रमादित्य उपाधि को यौगिक मानकर विक्रम संवत् अर्थात् पराक्रम का सूर्य अर्थ मान सकते हैं। पर महेन्द्रादित्य का कोई ऐसा उचित और सुन्दर अर्थ यही निकलता है। उसका अर्थ हो सकता है— महेन्द्रो अर्थात् महाराजाओं में सूर्य या महाराजा होते हुए सूर्य। महेन्द्रादित्य उपाधि के लिए उचित शब्द नहीं है। यह सिद्ध करता है कि यह किसी प्रसिद्ध व्यक्ति का नाम था, वह अपनाया गया है।

गुप्तकाल के समर्थक विद्वानों ने उपर्युक्त मौलिक प्रश्न पर पूर्णरूप से विचार नहीं किया है और चन्द्रगुप्त द्वितीय को विक्रमादित्य मानकर अन्य मन्तव्य प्रस्तुत किये हैं। पूर्वोक्त कथन से सिद्ध है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय को किसी भी अवस्था में विक्रम

संवत् का प्रवर्तक नहीं मान सकते हैं। अन्य जो युक्तियां की गई हैं वे इसी आधार पर स्थित हैं। जब आधार ही निराधार है तो अन्य युक्तियों का महत्व स्वयं समाप्त हो जाता है।

(2) गुप्तकाल में वैभव का काल— कालिदास ने अपने ग्रन्थों में सुख समृद्धि और वैभव का वर्णन किया है। ऐसा समय गुप्त-काल ही था।

यह कथन भी सत्य नहीं है। ई.पू. प्रथम शताब्दी में शकों के उच्छेद के पश्चात् भारत की स्थिति अच्छी हो चुकी थी। प्राचीन धर्मकर्म की सुप्रतिष्ठा भी उस समय हो गई थी।

(3) गुप्तकाल में संस्कृत भाषा का पुनरुत्थान कतिपय विद्वान् यह भ्रमपूर्ण मन्तव्य प्रस्तुत करते हैं कि गुप्तकाल में संस्कृत भाषा का पुनरुत्थान हुआ। गुप्तराजा संस्कृत के कवियों आदि के आश्रय दाता थे। प्रथम शताब्दी ई.पू. के बाद और छठी शताब्दी ई.पू. से पूर्व संस्कृत में रचनायें नहीं हुईं।

यह मत पूर्णतया भ्रान्त है। संस्कृत साहित्य के निर्माण का कार्य इन शताब्दियों में भी बन्द नहीं हुआ। काव्य आदि का निर्माण पूर्ववत् चालू रहा। प्रथम शताब्दी ई.पू. में स्वयं कालिदास हैं। प्रथम शताब्दी ई. में अश्वघोष का समय है। स्मृतियों, पुराणों आदि की रचना इस काल में होती रही हैं। जहां तक संस्कृत कवियों के आश्रय देने का सम्बन्ध है, उस विषय में संस्कृत साहित्य में दो ही राजाओं का मुख्यतया उल्लेख मिलता है। एक प्रथम शताब्दी ई.पू. में विक्रमादित्य और बाद में परमारवंशी धारा के राजा भोज (1005—1054 ई.) संस्कृत की अभिवृद्धि में गुप्त राजाओं का दर्शनमान कहीं भी नहीं मिलता।

(4) कालिदास के ग्रन्थों में गुप् धातु का प्रयोग :— कालिदास ने रघुवंश आदि में गुप् धातु का बार-बार प्रयोग किया। जैसे रघु. 1—21, 1—55, 2—3, 2—24, 4—20, 4—26 आदि, गुप् धातु का प्रयोग गुप्त राजाओं के स्मृत्यर्थ किया गया है। अतः ज्ञात होता है कि वह किसी गुप्त राजा के आश्रित था।

यह तर्क असंगत है। (क) किसी कवि के कुछ शब्दों या धतुओं को लेकर कुछ निष्कर्ष निकालना तभी सम्भव है जब वह प्रयोग किसी विशेष अर्थ को लेकर हुआ हो या कुछ विशेष संकेत करता हो। एक सामान्य प्रयोग वाली धातु को लेकर

इस प्रकार का अर्थ निकालना मरुमरीचिका में जलप्राप्ति की अभिलाषा हैं। (ख) कालिदास ने सुरक्षा करने के अर्थ में गुप् धातु का प्रयोग किया है। गुप् धातु का बार-बार प्रयोग रामायण, महाभारत आदि में भी मिलता है। इसका पारिभाषिक और राजनीतिक सुरक्षा अर्थ में कौटिल्य अर्थशास्त्र, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि में बार-बार प्रयोग मिलता है। जैसे मनु० 7-14, 56, 76, 8-374 से 378 याज्ञवल्क्य० 1-311 से 321। कौटिल्य अर्थशास्त्र में गुप्त, गप्ति आदि शब्दों का कितनी ही बार प्रयोग है। रघुवंश में जो गुप् के प्रयोग हैं, वे इसी प्रकार के हैं। (ग) यदि गुप् धातु को गुप्तराजाओं का सूचक मान सकते हैं तो उसके ग्रन्थों में प्राप्त शक् धातु के प्रयोगों को लेकर उसे शक राजाओं का आश्रित कह सकते हैं। इस प्रकार के तर्क बुद्धिसंगत न होने के कारण हास्यास्पद हैं।

(5) कुमार सम्भव में कुमार शब्द— पूर्व युक्ति के सदृश ही दूसरी हास्यास्पद युक्ति हैं कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमार गुप्त प्रथम के जन्म के स्मृत्यर्थ कालिदास ने कुमार सम्भव में कुमार शब्द रखा है तथा रघुवंश आदि में भी इसका प्रयोग किया है।

यह युक्ति भी उचित नहीं है। (क) संस्कृत में पुत्रार्थक शब्दों में कुमार शब्द सबसे अधिक प्रचलित है। कादम्बरी वेणीसंहार, मुद्राराक्षस, आदि ग्रन्थों में भी इस शब्द का सामान्य रूप से बार-बार प्रयोग है। पुत्र, सुत, तनय, आत्मज आदि के तुल्य इसका भी प्रयोग कालिदास ने किया है। पुत्रार्थक शब्दों में केवल कुमार का ही प्रयोग किया हो, ऐसी बात नहीं है। (ख) शिव के पुत्र स्कन्द के लिए कुमार शब्द भी विशेष प्रचलित शब्दों में है। अतः कुमार शब्द का प्रयोग कुमार सम्भव नाम में है। (ग) यदि कालिदास कुमारगुप्त या गुप्त राजाओं के स्मृत्यर्थ कुमारसम्भव लिखता है, तो उसके लिए यह अधिक उचित और सम्भव था कि वह रघुवंश के तुल्य गुप्तवंश नामक महाकाव्य लिखता।

(6) चन्द्र शब्द का प्रयोग — कालिदास ने रघुवंश में इन्दुमती स्वयम्बर के श्लोकों में तथा अन्य स्थलों में पर चन्द्र और इन्दु आदि चन्द्रवाची शब्दों के प्रयोग किये हैं। जैसे— ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः। इन्दुं नवोत्थानमिवेन्दु मत्थै आदि। ये प्रयोग चन्द्रगुप्त के सूचक हैं। इसी प्रकार कुछ श्लोकों में समुद्र शब्द समुद्रगुप्त का सूचक है।

यह युक्ति भी असंगत है। संस्कृत के सभी काव्यग्रन्थों में चन्द्र या चन्द्रभावाची शब्दों का प्रयोग है। काव्यों में चन्द्रवर्णन एक सामान्य वर्णन है। कहीं पर भी चन्द्र नाम आते ही चन्द्रगुप्त समझने लगना अपनी बुद्धि को धोखा देना है। इसी प्रकार समुद्र के लिए समुद्र शब्द अति प्रचलित शब्दों में है। इन शब्दों के प्रयोग के आधार पर कोई मन्तव्य उपस्थित करना सर्वथा भ्रमात्मक है।

(7) विक्रमोर्वशीय में विक्रम शब्द— विक्रमोर्वशीय में विक्रम शब्द का प्रयोग चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के लिए है।

यह युक्ति भी ठीक नहीं है। विक्रम शब्द पराक्रमवाची है। यह पुरुरवा के पराक्रम का सूचक है। पुरुरवा के स्थान पर विक्रम शब्द विक्रमादित्य का सूचक है। यह विक्रमादित्य नाम को सूचित करता है न कि विक्रमादित्य उपाधि को। इतिहास में भी चन्द्रगुप्त अपने नाम से प्रसिद्ध है न कि विक्रमादित्य नाम से। यह विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि किसी व्यक्ति विशेष के उल्लेख के लिए उसका नाम दिया जाता है, न कि उपाधि का।

यहां यह भी स्मरण रखना चाहिये कि इतिहास में कम से कम चार व्यक्ति ऐसे हुए हैं, जो विक्रमादित्य नाम या उपाधि वाले हैं। (1) उज्जैन के राजा विक्रमादित्य जिसने 56 ई. पू. विक्रम संवत् चलाया। (2) चन्द्रगुप्त द्वितीय (375–413 ई.), (3) स्कन्दगुप्त (455–467 ई.), (4) काश्मीर का राजा विक्रमादित्य (500 ई.) अतः विक्रम शब्द उसी विक्रमादित्य का संकेत कर सकता है, जिसका यह नाम हो।

(8) मालविकाग्नि मित्र की रचना :- मालविकाग्निमित्र नाटक कालिदास ने चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्त के वाकारक राजा रुद्रसेन द्वितीय के साथ हुए विवाहोत्सव पर लिखा होगा या उस अवसर पर उसका अभिनय किया गया होगा।

यह युक्ति अत्यन्त निःसार है। (क) गुप्तराजा की पुत्री के विवाहोत्सव पर कालिदास को अग्निमित्र राजा स्मरण आया। यह आश्चर्य की बात नहीं है। इसका अभिप्राय यह है कि उसके सम्मुख कोई उल्लेखनीय प्रतापी गुप्तराजा नहीं था। जिसके नाम पर नाटक चलता। (ख) मालविकाग्नि मित्र की रचना यह सिद्ध करती है कि उसके मस्तिष्क में अग्निमित्र का नाम गूँज रहा था। वह उसका नाम अमर करना चाहता था। उसमें उसने अग्निमित्र के पराक्रम का वर्णन किया है और भरत वाक्य में

भी अग्निमित्र की प्रशंसा की है। मालविकाग्नि मित्र की रचना गुप्तकाल के मत को सर्वथा त्रुटिपूर्ण सिद्ध करती है। इस नाटक से यह सिद्ध होता है कि वह अग्निमित्र के समय के आसपास ही हुआ है और अग्निमित्र के पराक्रम से बहुत प्रभावित था। अग्निमित्र पुण्यमित्र का पुत्र था। पुण्यमित्र 184 ई.पू. में मौर्यवंश के अन्तिम राजा बृहद्रथ को मारकर गद्दी पर बैठा। शुंगवंश का राज्य 73 ई.पू. तक रहा है। अग्नि मित्र का समय 150 ई.पू. के लगभग होगा।

कालिदास को प्रथम शताब्दी ई.पू. में उसके जीवन की घटनायें विशेष रूप से ज्ञात होंगी, उसने उनका उल्लेख किया है। कुछ विद्वानों ने इस विषय में यह तर्क प्रस्तुत किया है कि वाण ने हर्षचरित में उल्लेख किया है कि "सेना का निरीक्षण करने के बहाने मूर्ख ब्रह्मद्रथ राजा का बुलाकर सेनापति पुष्यमित्र ने उसे मार डाला।" यह वर्णन पुराणों आदि में अप्राप्त है। इस विषय में कथन है कि घटना का उल्लेख कोई भी कवि कर सकता है, परन्तु अपने काव्य ग्रन्थ का या नाटक का नायक किसी विशेष व्यक्ति को ही बनाया जाता है। अग्निमित्र को किसी विशेष कारण से ही नायक बनाया गया है। यदि चन्द्रगुप्त और कुमारगुप्त के स्मृत्यर्थ विक्रमोर्वशीयम् और कुमारसम्भव लिखे जा सकते थे तो मालविकाग्निमित्र के लिए भी कोई गुप्तराजा नायक ढूँढा जा सकता था।

(9) रघुदिग्विजय और समुद्रगुप्त दिग्विजय में साम्य— गुप्तकाल के समर्थक रघुवंश महाकाव्य में रघु के दिग्-विजय में समुद्रगुप्त (335-375 ई.) के दिग्विजय का प्रभाव देखते हैं। उनका कथन है कि कृषिषेण-लिखित प्रयाग वाली प्रशस्ति में समुद्रगुप्त के दिग्विजय को देखकर कालिदास ने रघु के दिग्विजय का वर्णन किया होगा। दोनों में साम्य भी पर्याप्त है। इसी प्रकार समुद्रगुप्त के द्वारा किए गये अश्वमेघ को ध्यान में रखकर मालविकाग्निमित्र में पुष्यमित्र के अश्वमेघ का वर्णन है।

ये युक्तियाँ निम्नलिखित कारणों से असंगत हैं—

(क) दिग्विजयों का वर्णन रामायण, महाभारत, पुराणों आदि में भी मिलता है। उसके लिए समुद्रगुप्त के दिग्विजय को आधार मानना आवश्यक है। (ख) समुद्रगुप्त को दिग्विजय के समय कावेरी नदी के तट पर पाण्ड्य राजा ने पीछे हटा दिया था, अतः उसका दिग्विजय आदर्श नहीं हो सकता। कालिदास के अनुसार रघु ने कावेरी के नीचे भी प्रायः सम्पूर्ण दक्षिण भारत पर विजय प्राप्त की थी। अतएव कालिदास ने

कहा है— “दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां खेरपि” तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे।। (रघु. 4-49) उसने पाण्ड्य राजाओं को भी जीता था। (ग) पुण्यमित्र ने दो अश्वमेघ किये थे। यह इतिहास से सिद्ध है। अयोध्या के शिलालेख से भी यह सिद्ध होता है। एक अश्वमेघ यज्ञ में महाभाष्यकार पतञ्जलि ही सम्भवत् पुरोहित थे। पुण्यमित्र ने यवनों को भी पराजित किया था। ये ऐतिहासिक घटनायें हैं। इनके लिए समुद्रगुप्त के अश्वमेघ को स्मरण करना सर्वथा अनावश्यक है।

(10) हूणों का उल्लेख — कालिदास ने निम्नलिखित श्लोको में हूणों का उल्लेख किया है और उनका निवास स्थान वङ्क्षु नदी माना है—

विनीताध्वश्रमरज्ञतज्ञस वङ्सुतीर विचेष्टनैः।

दुधुवुर्वाजिनः स्कन्धान् लग्नकुङ्कुम केसरान्।।

तत्र हूणावरोधानां भृत्येषु व्यक्तविक्रमम्।

कपोलपाटलादेशि वभूव रघुयेष्टितम्।। (रघु. 4-67, 68)

यह वङ्क्षु नदी वाल्हीक (वर्तमान बलख) देश में बहने वाली आक्सस ;बद्ध नदी है। 450 ई. के लगभग हूण वहां पर थे। 450 के लगभग कुमारगुप्त के राज्यकाल में उन्होंने भारतवर्ष पर आक्रमण किया। युवराज स्कन्दगुप्त ने उनसे युद्ध किया। 455-456 ई. के गिरनार शिलालेख से यह ज्ञात होता है— हूणैर्यस्य समागतस्य समरे. इत्यादि। अतः कालिदास का समय 450 ई. के बाद मानना चाहिये।

यह काल भी निम्नलिखित कारणों से ठीक नहीं है—

(क) हूणों का उल्लेख महाभारत तथा पुराणों के भुवन विन्यास प्रकरण में है। कालिदास ने दिग्विजय के प्रकरण में पारसीक, यवन, हूण, काम्बोज आदि जिन जातियों का उल्लेख किया है, वे नाम महाभारत और पुराणों में मिलते हैं। महाभारत (1-55-1 से 3) में हूणों आदि के नाम हैं—

चीनान् शकांस्तथा चोद्गान् बर्बरान् वनवासिनः।

वार्ष्णीशन् हारहूणांश्च कृष्णान् हैमवतांस्तथा।।

महाभारत आदि के आधार पर कालिदास ने हूणों का वर्णन किया है। (ख) कालिदास का दिग्विजय का वर्णन कवित्व प्रधान है। अतः उसने महाभारतादि में

वर्णित सभी जातियों का उल्लेख महाभारत और पुराणों में है। वस्तुतः इतिहास में ऐसा कोई समय नहीं बता सकते हैं, जिस समय ये सभी जातियाँ एक समय में रही हों।

(ग) पारसियों के धर्मग्रन्थ अवस्ता में हूणों का उल्लेख है। कनिष्क (78 ई. के लगभग) के समय में लिखित ललितविस्तर में बुद्ध ने बचपन में जिन लिपियों को लिखा, उनमें हूणों का भी उल्लेख है। ये निर्देश ई. पू. में हूणों की स्थिति प्रकट करते हैं। (घ) प्रो. आर.एन. आप्टे ने सिद्ध किया है कि लगभग 250 ई.पू. में हूण बैक्ट्रिया में थे। मध्य एशिया के इतिहास से भी ज्ञात होता है कि हूण द्वितीय शताब्दी ई.पू. में भारत के पश्चिमी भाग में विद्यमान थे। गर्गसंहिता ने ई.पू. प्रथम शताब्दी में शकों और हूणों के घोर आक्रमण का वर्णन किया है। इस हूण जाति का मूल नाम ह्यूंगनू जाति था। इसने यूची जाति को मध्य एशिया से भगाया था। यूची जाति आक्सन नदी (आमू नदी) पर आ बसी। यही जाति आगे चलकर कुशान नाम से प्रसिद्ध हुई। कनिष्क इसी जाति का राजा था। उधर हूण भी अपने राज्य का विस्तार कर रहे थे। वे द्वितीय शताब्दी ई.पू.0 में भारत के पश्चिमी भाग पर आ चुके थे, अतएव महाभारत आदि में उनका उल्लेख है। (30) कुछ विद्वानों ने वड्सु नदी का अर्थ आक्सस (आमू) नदी लिया है। परन्तु उक्त वर्णन में उसके तट पर कुंकुम और केशर का वर्णन किया गया है। केशर काश्मीर में ही प्रधानतया होता है, अतः काश्मीर में बहने वाली सिन्धु नदी वड्सु का अर्थ समझना अधिक उचित है। प्रो. राय ने विष्णुपुराण आदि के उद्धरणों से सिद्ध किया है कि वड्सु और सिन्धु नदी पर्यायवाची है। (राय शाकुन्तल की भूमिका पृष्ठ-08)।

(11) दिङ्नाग का उल्लेख – मेघदूत (पूर्व मेघ श्लोक 14) में कालिदास ने दिङ्नाग औश्च निचुल का नामोल्लेख किया है—

स्थानादस्मान् सरसलिचुलादुत्यतोदङ्मुखः खं

दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ।।

मल्लिनाथ ने अपनी टीका में कहा है कि निचुल और दिङ्नाग ये दोनों कवि कालिदास के सहपाठी थे। कालिदास ने उनका उल्लेख किया है। निचुल के विषय में कुछ ज्ञान नहीं है। दिङ्नाग के विषय में पर्याप्त विवाद है। इस नाम का एक बौद्ध

दार्शनिक था, जो वसुबन्धु का शिष्य था। इसका समय प्रो. कीथ 400 ई. मानते हैं, कुछ 450 ई. और कुछ छठी शताब्दी ई. मानते हैं।

कालिदास के इस कथन में दिङ्नाग नामक बौद्ध दार्शनिक का उल्लेख इन कारणों से नहीं माना जा सकता है। (क) कालिदास सामान्यतया श्लेष का प्रयोग बहुत कम करते हैं। (ख) यदि ध्वनि द्वारा दिङ्नाग माना भी जाय तो उसका साथी कवि था। उक्त दिङ्नाग बौद्ध दार्शनिक है, कवि नहीं। (ग) बौद्ध दार्शनिक दिङ्नाग उसका प्रतिस्पर्धी था, इसका आधार नहीं है। (घ) कालिदास अपने विरोधी का नाम स्थायी बनाता, यह सर्वथा असंगत प्रतीत होता है। विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि उसने 'दिङ्नागानाम्द' में आदर सूचक बहुवचन दिया है, ऐसा प्रयोग विरोधी के लिए सम्भव नहीं है। (ङ) बौद्ध दिङ्नाग उज्जैन या मालवा का निवासी नहीं था और न विक्रमादित्य का आश्रित कवि। (च) एक कुन्दमाला नाटक प्राप्त हुआ है। इसका लेखक दिङ्नाग है। उसके नान्दीपाठ में हेरम्ब (गणेश) और शिव की स्तुति से ज्ञात होता है कि वह हिन्दू कवि था। कुछ पाण्डुलिपियों के आधार पर इसका नाम 'धीरनाम' माना जाता है। कवि होने के कारण इस कालिदास का प्रतिस्पर्धी माना जा सकता है। परन्तु यह कालिदास का समकालीन था, यह सर्वथा संदिग्ध है। मल्लिनाथ ने दिङ्नाग कवि माना है, वह कोई अन्य ही कवि था। (छ) दिङ्नागानाम्द में दिङ्नाग शब्द मुख्यतः दिग्गज के लिए है।

(12) ज्योतिष के शब्दों का प्रयोग— कालिदास ने अपने ग्रन्थों में कुछ ज्योतिष के शब्दों का प्रयोग किया है, जैसे राशियों के नाम, जामित्र शब्द आदि। राशियों के नाम, जामित्र आदि शब्द मूलतः यूनानी है, इनका सर्वप्रथम प्रयोग आर्यभट्ट (जन्म सन् 473 ई.) ने किया है। अतः कालिदास का समय इसके बाद का होना चाहिये। कालिदास के प्रयोग हैं— (1) तिथौ च जामित्रगुणान्वितायाम्दं (कुमार सम्भव 07—1)। जन्मपत्री में लग्न से सातवें स्थान को जामित्र कहते हैं। मल्लिनाथ का कथन है— जामित्रं लग्नात् सप्तमं स्थानम्। इस सातवें स्थान पर स्त्री के सौभाग्य आदि का विचार होता है। यह जामित्र शब्द यूनानी शब्द डाएमेट्रन (ἡμέτερος) का परिवर्तित रूप है। (2) ग्रहैस्ततः पञ्चभिरुच्चसंश्रयैः रघुवंश 3—13) रघु के जन्म के समय पांच ग्रह उच्च स्थानों पर थे। पांच ग्रहों का उच्च स्थानों पर होना महाराजत्व या अतियशस्विता का सूचक है।

कालिदास और वाराहमिहिर के ग्रन्थों में भी समता पाई जाती है। वराहमिहिर (5.5-587 ई.) ने अयन बिन्दु निश्चित किया था। उसने वर्षाऋतु का प्रारम्भ आषाढ़ से माना है। उससे पूर्व दक्षिणायन का अर्थात् वर्षाऋतु का प्रारंभ श्रावण में माना जाता था। कालिदास ने आषाढ़ में वर्षा ऋतु मानी है। मेघदूत (1-2) में उसने कहा है— आषाढस्य प्रथम दिवसे मेघसाशिलष्ट सानुम्द” (2) भूमि की छाया पड़ने से चन्द्रग्रहण। वराहमिहिर— भूच्छायां स्वग्रहणे भास्करमर्कग्रहे प्रविया तीन्दुः। बृहत्संहिता, राहुचार। कालिदास— छाया हि भूमेः शशिवो मलत्वेनारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः।। (रघुवंश0 14-40)। (3) सूर्य की किरणों से चन्द्रमा का प्रकाशित होना। वाराहमिहिर सलिलमये शशिनि खेर्दीधितयो मूर्च्छितास्तमो नैशम्द। बृहत्संहिता चन्द्रचार। कालिदास— पुपोष बृद्धिं हरिदश्व दीधि तेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमा (रघुवंश0 3-22) वराहमिहिर विक्रमादित्य के नवरत्नों में था, अतः कालिदास को वराहमिहिर का समकालीन होना चाहिये।

उपर्युक्त उक्तियां निम्नलिखित कारणों से कालिदास के गुप्तकालीन होने की समर्थक नहीं मानी जा सकती है। (क) यहां पर विशेष विचारणीय यह है कि भारतीयों ने यूनानियों से ज्योतिष सीखा या यूनानियों ने भारतीयों से। पाश्चात्य विद्वानों ने जानबूझकर प्रयत्न किया है कि भारतीय साहित्य में विद्वान सम्बन्धी जो कुछ भी उल्लेख है, उन्हें यूनान की या रोम की देन सिद्ध करे। इस प्रयत्न का मूल कारण शास्त्रीय या साहित्यिक न होकर पूर्णतया राजनीतिक था। पाश्चात्य विद्वान् यह सहन नहीं कर सकते थे कि भारतीयों का महत्व बढ़ेगा और उनमें स्वाभिमान जागृत होगा। साथ ही यह सिद्धान्त खण्डित हो जायेगा कि पश्चिम ने संसार को विज्ञान की देन ही है। वस्तु स्थिति यह है कि सिकन्दर ने 326 ई.पू. में भारत पर आक्रमण किया था। उस समय से भारतीयों और यूनानियों का सम्बन्ध स्थापित हो गया था। उस समय तक भारत ज्योतिष आदि में पर्याप्त उन्नति कर चुका था। यूनानियों ने ईसा से कई शताब्दी पूर्व बेबीलोनिया के लोगों से ज्योतिष सीखा था और बेबीलोनिया ने भारत से। बेबीलोनिया के साथ भारत का सम्बन्ध चौथी-पांचवीं शताब्दी ई.पू. हो चुका था। इस परम्परा से अनेकों ज्योतिष आदि के पारस्परिक भारतीय शब्द यूनानियों आदि तक पहुंचे।

(ख) ईसा से 500 ई. पू. के बोधायन के गृह्यसूत्रों में राशियों के नाम आदि मिलते हैं। लोकमान्य तिलक ने गीतारहस्य (भूमिका पृष्ठ 567) में उसका उद्धरण दिया है कि— मीनमेषयोर्मेषवृषयोर्वा बसन्तः। इसमें मीन, मेष वृष राशियों का उल्लेख है। रामायण, महाभारत आदि में भी राशियों के नाम आदि मिलते हैं। अतः कालिदास ने भारतीय परम्परा से ये शब्द लिये हैं। (ग) जामित्र शब्द को यूनानी शब्द डाएमेट्रन का परिवर्तित रूप मानना भयंकर भूल है। इसके कारण हैं— (1) ई.पू. में भारत में ज्योतिष का प्रचार था और ये शब्द प्रचलित थे। (2) जामित्र शब्द शुद्ध भारतीय शब्द है। जामिं त्रायते इति जामित्रस्द। जामि शब्द का प्रयोग वेदों में स्त्री के लिए अति प्रचलित है। जन्मपत्री के सप्तम स्थान पर स्त्री की सुरक्षा, उसके सौभाग्य आदि का विचार होता है। अतः जामित्र नाम अत्यन्त उचित है। जाया मित्र शब्द से जामित्र मानना संदिग्ध है। (3) यह अधिक सम्भव है कि जामित्र शब्द को लेकर यूनानियों को क।डम्च्छ शब्द को जन्म दिया हो। (4) यदि जामित्र शब्द को “तुष्यतु दुर्जनः” न्याय से यूनानी देन मान भी लें तो भी गुप्तकालीन होना सिद्ध नहीं होता। सिकन्दर के समय से भारत और यूनान का सम्बन्ध होने से लगभग तीन शताब्दियों के अन्दर प्रथम शती ई.पू. में यह शब्द भारत में प्रचलित हो चुका होगा। (5) यहां यह भी स्मरण रखना उचित है कि ऐसे शब्द अश्वघोष के ग्रन्थों में भी मिलते हैं। परन्तु अश्वघोष को चतुर्थ या पंचम शताब्दी ई. में लाने का पाश्चात्य विद्वान् प्रयत्न नहीं करते। इससे ज्ञात होता है कि उनका प्रयत्न कितना पक्षपातपूर्ण और राजनीतिक है। (घ) ग्रहों की उच्चता, नीचता आदि का विवेचन भी प्राचीन ज्योतिष के साथ संबद्ध है। यह ई.पू. में विद्यमान था। (ङ) वराहमिहिर के ग्रन्थों से समता भी कालिदास के ऋणी होने को सूचित नहीं करती है। उसके कारण हैं— (1) आषाढ़ में वर्षा का आरम्भ देखकर कालिदास ने मेघदूत में यह वर्णन किया है। (2) कालिदास के “छाया हि भूमेः” श्लोक में चन्द्रग्रहण का वर्णन नहीं है, अपितु चन्द्रमा के अन्दर विद्यमान कलंक का उल्लेख है, जिसके कारण चन्द्रमा को मृगांक या शशांक आदि कहते हैं। (3) सूर्य की किरणों से चन्द्रमा का प्रकाशित होना, यह तथ्य वराहमिहिर की देन नहीं है। स्वयं यजुर्वेद में इस वैज्ञानिक तथ्य का उल्लेख है— सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसोऽ (यजुर्वेद 18-40) सुषुम्ण नामक सूर्य की किरण चन्द्रमा को प्रकाशित करती है। इसी तथ्य को ईसा से पूर्व 8वीं शताब्दी में हुए यास्काचार्य ने

निरुक्त में कहा है— अथात्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रभसं प्रति दीप्यते, तदेतेनोपेक्षितव्यम् ।
आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवति (निरुक्त 2—6)

यजुर्वेद और निरुक्त के उपर्युक्त कथन से सिद्ध होता है कि भारतीय ऋषि और विद्वान् वैज्ञानिक तथ्यों के अनुसंधान और ज्ञान से रहित थे, ऐसा पाश्चात्यों का विचार सर्वथा भ्रान्त तथा प्रमादपूर्ण है। प्रत्येक वैज्ञानिक तथ्य के लिए यूनानियों का ऋणी बताना, यह उनकी राजनीतिक चाल है। खेद है कि उच्चविश्वासी एवं दास मनोवृत्ति प्रधान भारतीय विद्वान् भी उनके वक्तव्यों को प्राप्त वाक्य मानकर औचित्य—अनौचित्य का विचार किए बिना ही प्रामाणिक मान बैठे हैं।

(13) कालिदास पर अश्वघोष का प्रभाव :— अश्वघोष कनिष्क (78 ई.) का आश्रित कवि था। अतः उसका समय 78 ई. के लगभग माना जाता है। उसके ग्रन्थ बुद्धचरित और सौन्दरनन्द तथा कालिदास के ग्रन्थों में कई स्थानों पर बहुत समता प्राप्त होती है। अतः गुप्तकाल के समर्थक विद्वानों ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि कालिदास ने ये विचार अश्वघोष के लिए है। अतः वह अश्वघोष से परमालीन है। कुछ प्रसंग की समतायें हैं और कुछ शब्दार्थोक्ति की। जैसे— (1) कुमार सम्भव में मदनदाह पर रतिविलाप और सौन्दरनन्द में नन्द के बौद्ध भिक्षुक होने पर उसकी पत्नी सुन्दरी का विलाप। (2) सौन्दरनन्द में नन्द विलाप और रघुवंश में अज विलाप। (3) बुद्धचरित सर्ग 3 में गौतम के दर्शनार्थ स्त्रियों की भीड़ और कुमार सम्भव सर्ग 7 में विवाहार्थ हिमालय के औषधिप्रस्थ नामक नगर में शिव के प्रवेश के समय तथा रघुवंश सर्ग 7 में इन्दुमती के स्वयम्बर के बाद कुण्डिनपुर में अज प्रवेश के समय उनके दर्शनार्थ नगर की स्त्रियों की भीड़ का वर्णन। बुद्ध चरित और रघुवंश के इस वर्णन में बहुत साम्य है। बुद्ध चरित में इसका वर्णन वर्ग—3 के श्लोक 13—24 में है और रघुवंश में सर्ग 7 श्लोक 5—15 तथा कुमार सम्भव सर्ग 7 श्लोक 56—62। दोनों के साम्य वाले कुछ विशेष श्लोक नीचे दिये जाते हैं—

(1) वातायनेभ्यस्तु विनिःसृतानि परस्परोपासितकुण्डलानि ।

स्त्रीषां विरेजुर्मुखपङ्कजानि सक्तानि हर्म्येष्विव पङ्कजानि ।।

अश्वघोष बुद्धदेवचरित 3—19

ताक्षां मुखैरासवगन्धगर्भैर्व्याप्तान्तराः सान्दकुतूहलानाम् ।

NOTES

- (2) वाता बवु स्वर्शसुखा मनोज्ञा, दिव्यानि वासांस्यव पातयप्तः ।
सूर्यः स एवाभ्यधिकं चकाशे जज्वाल सौम्यार्चिरनीरितोऽग्निः ॥
अश्वघोष बुद्धदेवचरित 1-41
दिशः प्रसेदुर्मरुतो बवुः सुखाः, प्रदक्षिणार्चिहविरग्नि राददे ।
बभूव सर्वं शुभर्शसि तत्क्षणं, भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम् ॥
रघुवंश0 3-14
- (3) तं गौरवं बुद्धगतं चकर्ष, भार्यानुरागः पुनराचकर्ष ।
सोऽनिश्चयान्नापि ययौ न तस्थौ तरस्तरङ्गोष्विव राजहंसः ॥
सौन्दर0 4-42
तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टिर्विक्षेपणाय पदयुद्धतमुद्वहन्ती ।
मार्गाचल व्यतिकराकुलितेव सिन्धुः शैलाधिराज तनया न ययौ न तस्थौ
कुमारसम्भव0 5-85
- (4) आदित्य पूर्वं विपुलं कुलं ते, नवं बयो दीप्तमिदं वपुश्च ।
बुद्धचरित 10-14
एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं नवं वयः कान्तमिदं वयुश्च ।
रघुवंश0 2-47
- (5) अतोऽपि नैकान्त सुखोऽस्ति कश्चिन्नैकान्तदुःखं पुरुषः पृथिव्याम् ।
बुद्धचरित0 11-43
कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःख मेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥

उपर्युक्त साम्य के आधार पर दोनों पक्षों के समर्थकों ने दूसरे को ऋणी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। गुप्तकाल के समर्थक कालिदास को ऋणी मानते हैं और ई.पू. काल के समर्थक अश्वघोष को ऋणी मानते हैं।

निम्नलिखित कारणों से अश्वघोष का ही ऋणी होना सिद्ध होता है। (क) अश्वघोष और कालिदास दोनों ने ही बहुत से भाव रामायण आदि से लिए हैं। वे दोनों ही रामायण के ऋणी हैं। अतएव दोनों के कई साम्य वाले स्थल रामायण में भी मिलते हैं। जैसे वाताबु0 और दिश प्रसेदुः0 के भाव के श्लोक रामायण में हैं। ततो वायुः सुखस्पर्शो नीरजस्को वषौ तदा (बालकाण्ड 22-4) परन्तु कालिदास और अश्वघोष के साम्य वाले स्थलों को परस्पर निरपेक्ष नहीं कहा जा सकता है। ऐसी स्थिति में कौन ऋणी है, यह विचारणीय है। अश्वघोष मुख्यतः एक दार्शनिक था, कवि नहीं। उसने बौद्धधर्म के सिद्धान्तों के प्रचारार्थ संस्कृत में काव्य लिखे। कालिदास मुख्यतः कवि हैं। वह महा कवि से भाव ले सकता था एक दार्शनिक से नहीं।

(ख) यदि कालिदास अश्वघोष को अनुकरणीय या आदरास्पद समझता होता तो माविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुजरीनां प्रबन्धानामतिक्रम्य0 में भास आदि के साथ अश्वघोष का नाम अवश्य देता। कालिदास का अश्वघोष के विषय में मौन इस बात को स्पष्ट कर देता है कि अश्वघोष उससे पूर्व नहीं था।

(ग) अश्वघोष संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध कवियों तक में स्थान नहीं पा सका है। उसके काव्यग्रन्थ न बृहत्त्रयी में लिए गये हैं और न ही लघुत्रयी में। अतः एक सामान्य कवि का अनुकरण कालिदास नहीं करता। (घ) अश्वघोष के काव्यों को इतना हीरू माना गया है कि किसी भी प्राचीन साहित्य शास्त्री ने उसके ग्रन्थों से कोई भी उद्धरण या उदाहरण नहीं दिये हैं और न ही सुभाषित ग्रन्थों में ही उसके श्लोक उद्धृत हैं। अतः कालिदास उसका अनुकरण करने वाला नहीं हो सकता। (ङ) अश्वघोष की काव्यक्षेत्र में अप्रौढ़ता इस बात से सिद्ध होती है कि उसके काव्यों में एक नहीं सहस्रों उदाहरण ऐसे हैं, जहां पर उसने केवल पादयूत्यर्थ 'चु' 'खलु' 'किल' 'तु' 'हि' 'च' आदि पादपूरक शब्द दिये हैं। एक सामान्य पाठक भी उसके ग्रन्थ पढ़ते-पढ़ते ही इन पादपूरक अव्ययों का रखता है। पादपूरक अव्ययों का प्रयोग अप्रौढ़ता का सूचक है। (च) अश्वघोष की रचना शिथिल है। वाक्य विन्यास आदि भी शिथिल है। उसकी गणना महाकवियों में नहीं है। अतएव बाण, राजशेखर आदि

NOTES

किसी ने भी उसका उल्लेख नहीं किया है। (छ) बुद्धचरित सर्ग-3 में गौतम पिता की आज्ञा से नगर के बाहर दिन में बिहार के लिए जा रहे थे। ऐसे अवसर पर अश्वघोष ने लिखा है कि स्त्रियां नींद से उठीं और केशादि प्रसाधन की ओर ध्यान न देकर बुद्ध के दर्शनार्थ खिड़कियों पर पहुंची। इस प्रसंग में निद्रा श्रृंगार और बुद्धदर्शन की इच्छा इस बात को प्रकट करती है कि यह वर्णन आप्रासंगिक है और किसी अन्य के ग्रन्थ से लिया गया है। रघुवंश महाकाव्य और कुमारसंभव में प्रासंगिक है। वर वधू को देखने के लिए सर्वत्र ही स्त्रियों की भीड़ लग जाती है। अश्वघोष ने विवाह का कोई वर्णन नहीं किया है, अतः उसने आप्रासंगिक स्थल पर यह भाव उपस्थित किया है। दूसरी बात यह है कि कालिदास साधारणतया किसी वर्णन को दुहराता नहीं है। उसने रघुवंश और कुमारसंभव दोनों में उन्हीं श्लोकों को दुहराया है। यदि उसने ये भाव कहीं और से लिए होते तो उनको दुहराकर अपनी चोरी का प्रदर्शन न करता। (ज) कतिपय अप्रचलित व्याकरण सम्बन्धी प्रयोग जो कालिदास के ग्रन्थों में आए हैं, उनका प्रयोग अश्वघोष ने बार-बार किया है। इसलिए अश्वघोष का ऋणी होना ज्ञात होता है। (झ) यह कथन असंगत है कि कालिदास ने अनुकरण करके अश्वघोष के भावों को परिष्कृत किया है। अनुभव सिद्ध यह है कि किसी आदर्श वस्तु को लेकर अनुकरण किया जाता है। अनुकरण सामान्यतया अपूर्ण ही होता है। जैसे- मेघदूत के आधार पर कितने ही इत ग्रन्थ बने। पर कोई भी मेघदूत के सौन्दर्य को प्राप्त नहीं कर सका। इसी प्रकार हिन्दी में बिहारी सतसई के अनुकरण पर लिखे गये कितने ही सतसई ग्रन्थ उसके समक्ष तुच्छ ही रहे हैं। यह आवश्यक नहीं है कि परकालीन कवि उससे बढ़ जाये। अतएव अनुकरण करने पर भी अश्वघोष कालिदास से न्यून रहा है। (ञ) शैली की तुलना करने से ज्ञात होता है कि अश्वघोष को काव्यों में कृत्रिमता अधिक है। कई स्थानों पर वह पाण्डित्य प्रदर्शन करने के लिए ही रचना करता है। जैसे- सौन्दरनन्द के प्रथम दो सर्गों में और बुद्धचरित के द्वितीय सर्ग में लुङ् लकार का प्रयोग और व्याकरण ज्ञान का प्रदर्शन किया है कि उसको पढ़कर भट्टिक के व्याकरण प्रधान भट्टिकाव्य का स्मरण हो आता है। जैसे-

(1) शमेऽभिरेमे विरराम पापाद् भेजे दमं संविबभाज साधून्।

(बुद्धचरित 2-33)

(2) नाध्यैष्ट दुःखाय नरस्थ विद्यां ज्ञानं शिवं यत्रु नदध्यगीष्ट

बुद्धचरित 2-35

(3) यत्र स्म मीयते ब्रह्म कैश्चित् कैश्चिन्न मीयते ।

काले विभीयते सोमो न चाकाले प्रमीयते ॥

सौन्दरनन्द 1-15

NOTES

अन्तिम श्लोक में मीयते का चार विभिन्न अर्थों में प्रयोग किया गया है। मा = देखना, मी = हिंसा करना, नि + मा = चिचोड़ना, प्र + मा = मरना। इसी प्रकार अवीवपत् और अमीयपत् का चार विभिन्न अर्थों में प्रयोग किया है। बुद्धचरित 11-70 में अब धातु का चिभिन्न अर्थों में प्रयोग करके व्याकरण का पाण्डित्य प्रदर्शन किया गया है। कालिदास में ऐसी कृत्रिमता नहीं है और न ऐसा पाण्डित्यप्रदर्शन। (2) कालिदास के ग्रन्थों में कितने ही अणणिनीय और वैदिक प्रयोग मिलते हैं, जिससे उसका प्रथम शताब्दी ई.पू. का होना सिद्ध होता है। अश्वघोष में ऐसे अपाणिनीय और वैदिक प्रयोग नहीं हैं।

प्रथम शताब्दी ई.पू. का मत -

प्राचीन भारतीय अनुश्रुति के अनुसार कालिदास विक्रम संवत् के प्रवर्तक विक्रमादित्य के नव रत्नों में था। इस मत के विरुद्ध निम्नलिखित आक्षेप हैं-

(क) विक्रमादित्य ऐतिहासिक नहीं- प्रथम शताब्दी ई.पू. में कोई राजा विक्रमादित्य था, इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है।

निम्नलिखित प्रमाणों के आधार पर ज्ञात होता है कि प्रथम शताब्दी ई.पू. में विक्रमादित्य राजा था। (1) सोमदेव कृत 'कथा सरित्सागर' में उज्जैन के राजा विक्रमादित्य का उल्लेख है। यह ग्रन्थ गुणाढ्यकृत वृहत्कथा पर आश्रित है। गुणाढ्य का समय लगभग 78 ई. माना जाता है। गुणाढ्य प्रथम शताब्दी ई. में था। अतः विक्रमादित्य के विषय में उसका उल्लेख प्रामाणिक समझना चाहिए। उस पर आश्रित होने के कारण कथासरित्सागर का वर्णन भी ऐतिहासिक और प्रामाणिक समझना चाहिए। इसके अनुसार यह विक्रमादित्य उज्जयिनी के राजा परमारवंशी महेन्द्रादित्य का पुत्र था। इसमें शकों का समूल उच्छेदन किया और इस महत्वपूर्ण घटना के उपलक्ष्य में उसने संवत् चलाया जो मालवगण स्थिति नाम से चला और बाद में विक्रम संवत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने म्लेच्छों का नाश किया, नास्तिकों का उच्छेदन किया और वैदिक धर्म को पुनः प्रतिष्ठित किया। पिता और पुत्र दोनों ही

शैव थे। विक्रमादित्य ने उज्जैन के महाकालेश्वर मन्दिर को बनवाया था। कथा सरित्सागर में विक्रमादित्य के राज्याभिषेक का वर्णन है कि –

NOTES

ततश्च यौवनस्थं तं विलोक्य प्राज्यविक्रमम् ।

अभिषिच्य सुतं राज्ये यथाविधि जनप्रियम् ॥

महेन्द्रादित्यनृपतिः सभार्यासचिवोऽपि सः ।

वृद्धों वाराणसीं गला शरणं शिन्निये शिवम् ॥

सोऽपि तद् विक्रमादित्यो राज्यमासाय पैतृकम् ।

नभो भास्वानिबारेमे राजा प्रतपितुं क्रमात् ॥

(कथा सरित् 0 28–59, 60, 61)

उपर्युक्त श्लोकों में विक्रमादित्य, उसके पिता महेन्द्रादित्य तथा उनके शैव होने का स्पष्ट निर्देश है। यह विक्रमादित्य ही अपनी न्यायप्रियता, पराक्रम आदि के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ।

(2) सातवाहन राजा हाल (प्रथम शताब्दी ई.) ने अपने ग्रन्थ गाथा-सप्तशती में एक विक्रमादित्य राजा का उल्लेख किया है। संग्रहण सुहरस पलणेन विक्कमा इत्तचरिअं (गाथा 0 5–64) टीकाकार गदाधर ने लिखा है कि— विक्रमादित्योऽपि भ्रत्यस्य करे लक्षं ददाति इत्यर्थः। अर्थात् उन दानी और पराक्रमी विक्रमादित्य ने अपने नौकर के पराक्रम पर प्रसन्न होकर उसे एक लाख मुद्राएं पुरस्कार में दी। हाल प्रथम शताब्दी ईसवी का है। अतः उसका उल्लेख प्रामाणिक समझना चाहिए।

(3) साहित्यिक प्रमाणों को भी शिलालेख आदि के तुल्य प्रामाणिक समझना चाहिये। इतिहासज्ञों ने विक्रम संवत् के प्रवर्तक विक्रमादित्य की ही 'ऐतिहासिकता पर संदेह उपस्थित किया है। यही नहीं, इतिहासज्ञों ने ईसवीय सन् के प्रवर्तक ईसा की ऐतिहासिकता को भी सन्दिग्ध माना है। सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ H.G. Wells के शब्दों में ईसा की ऐतिहासिक सत्यता यह है—

"To assume that he never lived, that the accounts of his life are inventions, is more difficult and raises for more problems for the historians than to accept the essential elements of the gospel stories as fact."

(The three greatest man in history लेख से)

NOTES

इतिहासज्ञों के लिए विशेष विचारणीय यह है कि क्या संसार के किसी भाग में भी यह सम्भव है या हुआ है कि कोई व्यक्ति न रहा हो और उसके नाम से सम्वत् चल पड़े और परकालीन व्यक्ति बिना सन्देह के उसकी ऐतिहासिकता को मान ले। ईसा का भी कोई शिलालेख नहीं है। इसी प्रकार सैकड़ों राजा आदि हुए हैं, जिनके शिलालेख आदि नहीं हैं। इतने से उनकी ऐतिहासिकता समाप्त नहीं हो जाती है।

(4) यह विक्रमादित्य उज्जयिनी का राजा था, गुप्त राजा पाटलिपुत्र के राजा था। कालिदास उज्जयिनी के विक्रमादित्य का आश्रित कवि था। यद्यपि गुप्त राज्य में उज्जैन भी था, परन्तु उनकी राजधानी पाटलिपुत्र ही थी। उज्जैन केवल प्रान्तीय राजधानी थी।

(5) विग्सेन्ट स्मिथ (Vincent Smith) और एडगर्टन (Edgerton) इस बात को स्वीकार करते हैं कि प्रथम शताब्दी ई.पू. में विक्रमादित्य की सत्ता सम्भव है।

(6) मेरुतुंगाचार्य की जैन चरित-पद्मावली में भी विक्रमादित्य का उल्लेख है। उसके अनुसार यह घटना महावीर के निर्वाण के 470वें वर्ष में हुई। महावीर का निर्माण 527 ई.पू. में हुआ। अतः 527-470 - 56 ई. पू. समय विक्रमादित्य का सिद्ध होता है।

निम्नलिखित कारणों से कालिदास को उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य का आश्रित कवि मानना उचित है।

(1) उज्जयिनी के राजा शैव थे। कालिदास के ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वह शिवभक्त था। उसने शाकुन्तल रघुवंश, कुमारसम्भव आदि में शिव की ही स्तुति की है। गुप्त राजा वैष्णव थे, अतः वह उनका आश्रित नहीं हो सकता है। (2) उज्जयिनी के राजा सूर्यवंशी थे। रघुवंश में सूर्यवंशी राजाओं का ही वर्णन है। गुप्तराजा चन्द्रवंशी थे। (3) विक्रमोवंशीय में कालिदास ने नायक पुरुरवा के स्थान पर विक्रम नाम विक्रमादित्य के स्मरणार्थ रखा है। साथ ही उसके पिता महेन्द्रादित्य के स्मृत्यर्थ उसने इन्द्र शब्द के लिए महेन्द्र शब्द का प्रयोग किया है। साधारणतया

कालिदास उसी शब्द की पुनरावृत्ति नहीं करता है। उसने प्रथम अंक में 6 वार महेन्द्र शब्द का प्रयोग किया है। तृतीय अंक के विष्कम्भक में 4 बार महेन्द्र का प्रयोग है। यद्यपि विष्कम्भक दो ही पृष्ठ का है। इसी प्रकार अन्तिम अंक में भी 4 बार महेन्द्र का प्रयोग है। इनमें से कुछ विशेष संकेत करते हैं विक्रमोवंशीय सम्भवतः विक्रमादित्य के राज्याभिषेक के समय खेला गया था। निम्नलिखित स्थान उसी का संकेत करते हैं—

- (क) दिष्ट्या महेन्द्रोपकारपर्याप्तेन विक्रममहिम्ना वर्धते भवान्। अंक—1
- (ख) अनुत्संकः खलु विक्रमालंकारः अंक—1
- (ग) सदृशं पुरुषादन्तरविदो महेन्द्रस्य। अंक—3
- (घ) प्रथं पुत्र दर्शनेन विस्मृतास्मि। इदानीं महेन्द्र संकीर्तनेन स्मारितः समयो मम हृदयमायासयति। अंक—5
- (ङ) रम्भे उपनीयतां स्वयं महेन्द्रेण संभृतः कुमारस्यायुषो यौवराज्याभिषेकः। अंक—5
- (4) विक्रमादित्य संवत् संस्कृत भाषा का संरक्षक और उद्धारक था। वह कवियों का आश्रयदाता था। अतः वह कालिदास का आश्रयदाता रहा होगा। (5) रघुवंश 6—32 में उसने अवन्ति के राजा (विक्रमादित्य) का उल्लेख किया है और उसके प्रति श्रद्धा प्रदर्शित की है। अवन्ति नाथेडयमुदग्रबाहु यन्त्रोल्लिखितो विभाति।

(ख) विक्रमादित्य उपाधिमात्र — कुछ विद्वानों ने यह मन्तव्य उपस्थित किया है कि प्रथम शताब्दी ई.पू. में जिस विक्रमादित्य को मानते हैं, सम्भवतः विक्रमादित्य उसकी उपाधि रही होगी।

यह वक्तव्य ठीक नहीं है। प्रथम शताब्दी ई.पू. वाले व्यक्ति का नाम ही विक्रमादित्य था। उसकी न्यायप्रियता आदि गुणों के कारण उसके नाम से सैकड़ों कथायें प्रचलित हो गईं। उसके आदर्श को मानकर ही चन्द्रगुप्त द्वितीय ने विक्रमादित्य उपाधि धारण की। महापुरुषों के नाम बाद में उपाधि के रूप में प्रचलित हो जाते हैं। यह सामान्य प्रथा है। यह प्रथा संसार के प्रायः सभी देशों में है। कुमारगुप्त ने विक्रमादित्य के पिता का नाम अर्थात् महेन्द्रादित्य उपाधि धारण की और स्कन्दगुप्त ने पुनः महेन्द्रादित्य के पुत्र का नाम अर्थात् विक्रमादित्य की उपाधि धारण की।

(ग) नवरत्नों की अप्रमाणिकता— ज्योतिर्विदामरण (22-10) के श्लोक धन्वन्तरिक्षपणका. में जिन नवरत्नों का वर्णन है, उनकी ऐतिहासिकता को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है।

इस श्लोक में धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, बेताल भट्ट, घटकपेर, कालिदास, वराहमिहिर और वररुचि — ये नव विक्रमादित्य के नवरत्न माने गये हैं। इनमें से क्षपणक शंकु और बेतालभट्ट के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। धन्वन्तरि वररुचि और घटकपर्पर कौन हैं ? यह अभी तक निश्चय नहीं हुआ है। अमरसिंह अमरकोष के रचयिता के रूप में प्रसिद्ध हैं। इसका समय भी निश्चित नहीं है। वह 414 ई. और 642 ई. के मध्य माना जाता है। वरामिहिर एक प्रसिद्ध ज्योतिर्विद था। उसका देहान्त 587 ई. में हुआ है। इस श्लोक के आधार पर यह सिद्ध करना सम्भव नहीं है कि ये 9 व्यक्ति कभी भी समकालीन रहे हैं। अतः इन नवों समकालीनता संदिग्ध ही है। इसमें केवल इतना ही प्रामाणिक है कि कोई विक्रमादित्य राजा था और उसके नवरत्नों में से एक कालिदास था।

(घ) विक्रमसंवत् के विषय में संदेह— इस विषय में यह संदेह उपस्थित किया गया है कि यदि प्रथम शताब्दी ई.पू. में कोई विक्रमादित्य राजा हुआ होता तो उसी समय से संवत् के साथ विक्रम नाम जुड़ा होता।

यह संवत् मालनगण स्थिति आदि नामों से चलता रहा। नवम शताब्दी से यह विक्रम संवत् नाम से चला है। उसमें “विक्रमकाल” ऐसा निर्देश है। अभितगति का “सुभाषित रत्न संदोह” विक्रमसंवत् का उल्लेख है और विक्रम शब्द विक्रमादित्य राजा के लिए आया है। संवत् 480, 493, 529 और 589 के शिलालेखों में इस संवत् का सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है। इनमें यह संवत् ‘मालवानां गणस्थित्या’ “श्रीमालव गणाम्नाते” “मालवगण स्थितिवशान्” इस रूप में उल्लिखित है। मालव गण के सैकड़ों सिक्के राजस्थान के नगर नामक ग्राम में मिले हैं, जिनमें ‘मालवानां जय’ मालन गणस्य जय आदि शब्द मिलते हैं।

प्रो. के.एम. शंभवनेकर ने इस विषय पर विस्तृत विचार किया है और प्रकट किया है कि गणस्थिति का वस्तुतः अर्थ क्या है— (1) गण शब्द का अर्थ है गणक। गण का अर्थ शब्द र्णवकोश में भी दिया है। गणस्थिति का गणना की पद्धति। उपर्युक्त शिलालेखों के उद्धरणों का अर्थ है— (क) मालकें की गणना पद्धति से (ख) मालवों की गणना के अनुसार, (ग) मालवों की गणना पद्धति के कारण। मालव गणस्थिति वशात् से स्पष्ट है कि यहां पर गण का अर्थ गणना है और गणस्थिति का

NOTES

अर्थ गणना पद्धति है। (2) इस संवत् के साथ विक्रम नाम बाद में जुड़ने के कारण यह ज्ञात होता है कि वह संवत् प्रारम्भ में मालवों की समृद्धि का सूचक रहा। विक्रमादित्य ने अपना व्यक्तिगत नाम जोड़ने की अपेक्षा इसको राष्ट्रीय रूप देने के लिए मालव नाम जोड़ा, परन्तु इस संवत् के साथ उसका नाम सम्बद्ध रहा। उसी के बाद में मालव संवत् न कहकर विक्रम संवत् कहने लगे। इससे ज्ञात होता है कि मालव संवत् और विक्रम संवत् पर्यायवाची की तरह प्रयुक्त होते थे। यह भी सम्भव है कि साहित्य आदि के ग्रन्थों में विक्रम संवत् नाम चलता रहा हो और उसी आधार पर यह नाम बाद में रखा गया। (3) यह सम्भव नहीं है कि दूसरे के सम्वत् को दूसरे के नाम से चालू कर दिया जाय और लोग उसे मान लें। (4) चन्द्रगुप्त द्वितीय का इस संवत् से कुछ भी सम्भव नहीं है, यह पहले लिखा जा चुका है। (5) यह विक्रमादित्य परमारवंशी उज्जैन का राजा ही है। राजपूतों की वंशावलि में भी उसका उल्लेख है।

कालिदास को प्रथम शताब्दी ई.पू. में मानने के कारण :-

निम्नलिखित कारणों से कालिदास को प्रथम शताब्दी ई.पू. में मानना उचित है। (1) कालिदास की भाषा और शैली गुप्तकालीन शिलालेखों से बहुत प्राचीन है। शिलालेखों में कृत्रिमता, लम्बे समासों का होना, पाणिनीय व्याकरण का पूर्ण प्रभाव इस बात को सिद्ध करता है कि उनमें और कालिदास में कई शताब्दियों का अन्तर है। समुद्रगुप्त की प्रयागवाली प्रशस्ति इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। एक ही समस्त पद लगभग 30 पंक्तियों का है और उस एक वाक्य में ही उसके सारे दिग्विजय का वर्णन है। ऐसी कृत्रिमता कालिदास में सर्वथा यही है और न ऐसे समासयुक्त पद। कालिदास की भाषा और शैली रामायण और महाभारत की भाषा और शैली के बहुत समीप है। (2) कालिदास ने कितने ही अपाणिनीय प्रयोग किए हैं। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास उस समय हुआ था, जब पाणिनीय व्याकरण पूर्णतया प्रतिष्ठित नहीं हुआ था। या अन्य संस्कृत व्याकरण भी पाणिनीय व्याकरण के साथ ही साथ प्रचलित थे। उनके आधार पर ही कालिदास ने ऐसे प्रयोग किए। गुप्तकाल में पाणिनीय व्याकरण पूर्णतया प्रतिष्ठित हो चुका था। कोई भी कवि उसके नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकता था। शाकुन्तल के अपाणिनीय प्रयोगों का संग्रह 'कालिदास की शैली' शीर्षक में है। कुछ ऐसे प्रयोग हैं— (क) पातयामास को पृथक् करके प्रयोग तं पातयां प्रथममास पपात पश्चात्। (रघु0 9-61)। (ख) प्रभ्रशयांचकार को पृथक् करना— प्रभ्रशयां यो बहुषं चकार। (रघु0 13-36)। (ग) बभूव के स्थान पर वैदिक रूप 'आस' का प्रयोग (रघु0 14-23) (कुमार0 1-35)। (घ) कामयमान के स्थान पर कामयान प्रयोग (शाकुन्तल अंक-3) (ङ) दन्तवार के स्थान पर वैदिक दाश्वार का प्रयोग (रघु0

14-71)। (च) त्रयम्बक के स्थान पर वैदिक रूप त्रियम्बक का प्रयोग (कुमार0 3-44)
 (3) उन्होंने अप्रचलित एवं वैदिक शब्दों का प्रयोग किया है जैसे- पेलन, परमेष्ठी,
 धिण्य, आदि शब्द। यही नहीं उन्होंने शाकुन्तल में अभी वेदि परितः0 (अंक 4, श्लोक
 8) यह वैदिक छन्द प्रस्तुत किया है। इससे ज्ञात होता है कि वह वैदिक काल के
 बहुत समीप थे। रामायण और महाभारत के कितने ही आर्ष प्रयोग और अप्रचलित
 प्रयोग उसकी रचनाओं में मिलते हैं। (4) उनकी शैली से ज्ञात होता है कि उनके
 समय में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी। पतंजलि (150 ई.पू.) के समय में संस्कृत
 बोलचाल की भाषा थी, यह महाभाष्य के सूत और वैयाकरण के शास्त्रार्थ से सिद्ध
 होता है। कालिदास का समय उसके समीप ही होना चाहिये। (5) मालिवकाग्नि
 मित्रम् में आग्नि मित्र को नायक बनाना, उसका भरतवाक्य और उस समय के कुछ
 विशेष उल्लेखनीय तथ्यों पर प्रकाश डालना उनका अग्निमित्र (150 ई.पू.) के समय के
 समीप होना सिद्ध करता है। (6) मेघदूत (1-30) में उल्लेख है कि उज्जैन के बृद्ध
 उदयन की कथा सुनायेंगे- प्राप्यावन्तीनुदयन कथा को विदग्राम वृद्धान्0। इससे ज्ञात
 होता है कि उनके समय तक उज्जैन में उदयन की कथा अतिप्रचलित थी। उदयन
 बुद्ध और महावीर का समकालीन था। उदयन की यह प्रसिद्धि ई.पू. यही सम्भव है।
 (7) उन्होंने परशुराम को ऋषि माना है अवतार नहीं। यह ई.पू. में ही था। ई.पू. के
 बाद में उन्हें अवतार माना गया है। (8) अश्वघोष पर प्रभाव का उल्लेख किया जा
 चुका है। यह भी ई.पू. में स्थिति को सिद्ध करता है। (9) उन्होंने मेघदूत में विदिशा
 को एक समृद्ध प्रदेश माना है। अग्निमित्र विदिशा का राजा था। इससे भी ई.पू. सिद्ध
 होता है। (10) उन्होंने रघुवंश (6-60) में पाण्ड्य देश के राजा का वर्णन किया है-

पाण्ड्योऽयमंसार्पित लम्बहारः

क्लृप्ताङ्गरागो हरिचन्दनेन ।

आभाति बालातपरक्तसानुः

सविर्झरोद्गार इवाद्रिराजः ॥

आगे रघुवंश (6-63) में उसे दक्षिण का सर्वश्रेष्ठ राजा माना है। अतः इन्दुमती
 से उसकी सखी सुनन्दा कहती है-

रत्नानुविद्धार्णवमेखलाया दिशः सपत्नी भव दक्षिणस्याः ।

अर्थात् तू दक्षिण की महारानी बनना। रघुवंश (4-49) में कालिदास में पाण्ड्य राजा पर रघु की विजय का वर्णन किया है। तस्यामेव रघोः पाण्ड्या प्रतापं न विषेहिरे। इससे सिद्ध होता है कि उसके समय में पाण्ड्य राजा थे। पाण्ड्यों राज्य चतुर्थ शताब्दी ई. में समाप्त हो चुका था। प्रथम शताब्दी ई.पू. में पाण्ड्यराजा थे। यह ऐतिहासिक प्रमाण स्पष्ट रूप से कालिदास का समय प्रथम शताब्दी ई.पू. सिद्ध करता है। (11) भीटा की मुद्रा को प्रो. राय ने ई.पू. का निर्णायक माना है। परन्तु इस युक्ति को उचित आधार नहीं माना जा सकता है। इसका कारण यह है कि इससे यह स्पष्ट सिद्ध नहीं होता है कि इसमें शाकुन्तल के प्रथम अंक की घटना है अर्थात् राजा रथ पर बैठकर मृग का शिकार कर रहा है। दूसरा कारण यह भी है कि यह सिद्ध नहीं है कि साहित्यिक ग्रन्थों के वर्णन मुद्राओं पर चलते थे। (12) शाकुन्तल के सहजं किल यद् विनिन्दितं० (6-1) से ज्ञात होता है कि उसके समय में बौद्ध धर्म का पर्याप्त प्रभाव था। यह ई.पू. के समय का ही संकेत करता है। (13) कालिदास के ग्रन्थों के अन्तः साक्ष्य से भी ज्ञात होता है कि उसका समय ई.पू. में था। उसने उत्तराधिकार के नियम और चोरी के दण्ड का जो वर्णन किया है वह ई.पू. में ही प्रचलित था। शाकुन्तल अंक-6 में धनमित्र त्रणिक् की मृत्यु और उसके उत्तराधिकारी के विषय में जो वर्णन है उससे ज्ञात होता है कि उस समय विधवा स्त्री को पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होने का अधिकार प्राप्त नहीं था। यह स्थिति ई.पू. में ही थी। उस समय मनु, आयस्तम्ब और वसिष्ठ की स्मृतियां थी उनके अनुसार विधवा स्त्री को अधिकार नहीं था। बाद में लिखे गये याज्ञवल्क्य, वृहस्पति, शंख और लिदिवत की स्मृतियों में स्त्री को उत्तराधिकार दिया गया है। इसी प्रकार शाकुन्तल अंक 6 में अंगूठा चुराने का दण्ड मृत्युदण्ड बताया गया है। विक्रमोर्वशीय में भी रत्न चुराने का ऐसा ही दण्ड बताया गया है। (आत्मनों बधामाहर्ता अंक 5-1) मनु और आपस्तम्ब के अनुसार रत्न की चोरी के लिए मृत्युदण्ड ही है। बाद की वृहस्पति आदि की स्मृति में आर्थिक दण्ड आदि भी मृत्युदण्ड के साथ वैकल्पिक है।

उपर्युक्त कारणों से यह सिद्ध होता है कि कालिदास प्रथम शताब्दी ई.पू. में ही हुआ था।

यूनिट-2

मालविकाग्नि मित्रम् तथा विक्रमोर्वशीयम् से सम्बन्धित प्रश्न

NOTES

कालिदास की नाट्यकला :

कालिदास संस्कृत का सर्वश्रेष्ठ नाटककार माना जाता है। उसके मालविकाग्नि मित्र, विक्रमोर्वशीय और अभिज्ञान शाकुन्तल इन तीन नाटकों में से शाकुन्तल ही उसकी नाटकीय प्रतिभा का सर्वोत्तम परिचायक है। कालिदास के नाटकों में जो विशेषताएं सर्वप्रथम लक्षित होती हैं वे हैं— घटना संयोजन में सौष्टव, घटनाओं और वर्णनों की सार्थकता, वर्णन में स्वाभाविकता, रचना कौशल, वर्णनों और घटनाओं की संकेतात्मकता, वरित्र-चित्रण में वैयक्तिकता, कवित्व और रस परिपाक। संस्कृत के अधिकांश नाटकों में यह त्रुटि प्राप्त होती है कि वे अभिनय के लिए पूर्णतया उपयुक्त नहीं होते हैं। परन्तु कालिदास के नाटकों में यह विशेषता है कि वे अभिनय के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं। घटना संयोजन में सौष्टव – घटना संयोजन की दृष्टि से महाकवि कालिदास की असाधारण कुशलता स्पष्ट होती है। घटना संयोजन में विशेष सौष्टव के स्थल उदाहरणार्थ शाकुन्तल के कतिपय दृश्य द्रष्टव्य हैं— यथा सखियों का परस्पर विवाह विषयक वार्तालाप, शकुन्तला का भ्रमर से पीड़ित होना, अनुसूया के द्वारा शकुन्तला की उत्पत्ति का संक्षिप्त वर्णन, द्वितीय अंक में राजा का शिकार खेलने न जाना, शकुन्तला को देखने के लिए आश्रम में जाने का बहाना सोचते ही दो ऋषिकुमारों का प्रवेश और राक्षसबधार्थ आश्रम में रुकने की प्रार्थना, शकुन्तला को बिना देखे विदूषक का प्रस्थान, तृतीय अंक में गान्धर्व विवाह के पश्चात् गौतमी का प्रवेश, चतुर्थ अंक में दुर्वासा का शाप, अंगूठा दिखाने से शाप मुक्ति का आश्वासन, पंचम अंक में हंसपदिका का गीत, प्रत्याख्यान के बाद मेक्का द्वारा शकुन्तला को मारीच के आश्रम में ले जाना, षष्ठ अंक में अंगूठी का मिलना और राजा का दुःखित होना, सप्तम अंक में राजा का पुत्र दर्शन और शकुन्तला से मिलना। सप्तम अंक में राजा भरत की माता का नाम जानना चाहता है। उसी समय शकुन्तलालावण्यं प्रेक्षस्व के द्वारा उसका नाम जान लेता है।

घटनाओं और वर्णनों की सार्थकता :

कालिदास के नाटकों की प्रत्येक घटना सार्थक है। वह किसी विशिष्ट उद्देश्य को लक्ष्य करके रखी गई है। यथा शाकुन्तल में प्रथमांक में तपस्वियों के आगमन से राजा को चक्रवर्ती पुत्र का आशीर्वाद प्राप्त होता है। वह उनके आदेशानुसार आश्रम में जाता है। फलस्वरूप शकुन्तला से प्रेम होता है जो विवाह में परिणत होकर फलित होता है। इत्यादि।

कालिदास की मुख्य विशेषता है कि उनका वर्णन स्वाभाविक होता है। जैसे शाकुन्तल के प्रथमांक में मृग के दौड़ने का वर्णन (1-7) रथ की गति का वर्णन (1-8, 9) तीनों सखियों का परस्पर वार्तालाप, द्वितीय अंक में राजा और विदूषक का वार्तालाप, तृतीय अंक में प्रेम दर्शन और गान्धर्व विवाह, चतुर्थ अंक में शकुन्तला की विदाई का दृश्य पंचम अंक में शकुन्तला का प्रत्याख्यान, षष्ठ में विरही दुष्यन्त का शोकातुर होना तथा सप्तम अंक में पुत्र मिलन तथा स्त्री मिलन आदि।

रचना कौशल :

कालिदास कथानक के संचयन और उसके निर्माण में असाधारण कुशल हैं। उसने महाभारत के एक साधारण और नीरस कथानक को अपनी रचना कुशलता से अनुपम और सरस बना दिया है। उसके रचना कौशल में उर्वरता, नवीनता तथा कल्पना बाहुल्य है।

नाट्य शास्त्रीय पाण्डित्य :

कालिदास ने अपने नाटकों में नाटकीय कुशलता के साथ कवित्व का समन्वय करके नाटकों को चिरस्थायी बना दिया है। एक ओर वह इन नाटकों में अपने शास्त्रीय पाण्डित्य का समावेश करता है और दूसरी ओर अपनी उर्वर कल्पना शक्ति के द्वारा उसमें अलौकिक चमत्कार भर देता है। इसका विशेष विस्तृत वर्णन अगले काव्य सौंदर्य शीर्षक में किया गया है। कालिदास ने शाकुन्तल में 5 अर्थप्रकृतियों, 5 अवस्थाओं तथा 5 सन्धियों को सुन्दर रूप में रखा है।

कालिदास ने यद्यपि नाट्यशास्त्र के नियमों का पूर्णरूप से पालन नहीं किया है, तथापि मूलरूप में उनका पालन अवश्य किया है। इसका कारण यह हो सकता है

कि उस समय तक नाट्यशास्त्र के नियम पूर्ण कठोरता को प्राप्त न हुए हों। नाटकीय नियमानुसार कालिदास ने शाकुन्तल के प्रारम्भ में या सृष्टिः० (1-1) नाम्दीपाठ तथा अन्त में भरतवाक्य प्रवर्ततां प्रकृति० (7-35) दिया है।

कालिदास के नाटकों में काव्य सौन्दर्य :

कालिदास ने अपनी कृतियों में अन्तः प्रकृति और बाह्य प्रकृति का सुन्दर समन्वय किया है। जो घटना मानव के हृदय में हो रही है, वैसी ही घटना बाह्यप्रकृति में भी हो रही है। राजा दुष्यन्त शकुन्तला से प्रेम करके उसे भूल जाता है, उधर प्रस्तावना के श्लोक में भ्रमर शिरीष के पुण्य का स्वाद लेकर उन्हें भुला देते हैं। शाकुन्तल के चतुर्थांक में यह समय विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। शकुन्तला पति के वियोग में खिन्न है। उधर चन्द्रमा के छिपने से कुमुदनी की अवस्था दयनीय हो गयी है। अन्तर्हिते शशिनि. (4-3) यदि शकुन्तला प्रिय मिलन के लिए आतुर हैं तो चकवी भी चकवा से क्षण भर के लिए भी पृथक् नहीं रहना चाहती।

प्रकृति प्रेम :

कालिदास प्रकृति प्रेमी कवि हैं। ऋतुसंहारम्द प्रकृति के उदान्तप्रेम का परिचायक है। पुनश्च कवि द्वारा प्रत्येक रचना में प्रकृति का मनोरम तथा सजीव वर्णन उसका प्रकृति के साथ तादात्म्य का अनुभव कराता है। कालिदास प्रकृति को सजीव और मानवीय भावनाओं से ओतप्रोत मानते हैं। मनुष्य के तुल्य वह भी सुख-दुख का अनुभव करती है। वह मनुष्य के सुख-दुःख में अपनी सहानुभूति प्रकट करती है। मनुष्य और प्रकृति एक दूसरे के पूरक हैं। शाकुन्तल में शकुन्तला वृक्षों को अपना सहोदर तथा लताओं को अपनी सगी बहन मानती है। अस्ति में सोदरस्नेहो० (1 वा० 48) प्रकृति की नैसर्गिक सुषमा में जो रस और आनन्द है वह कृत्रिम में नहीं है। अतएव वह निसर्ग सुन्दुरी असाधारण मनोरम प्रतीत होती है। शुद्धान्त दुर्लभ० (1-17) केशरवृक्ष के पास खड़ी हुई शकुन्तला उसकी प्रियालता के तुल्य सुन्दर दीखती हैं। लतासकथ एवायं (1 वा. 57) शकुन्तला के लिए आम्र और वनज्योत्स्ना का विवाह पति-पत्नी के विवाह के तुल्य मनोरम है। यहां पर शाकुन्तल से ही उदाहरण प्रस्तुत किये हैं अति सुपरिचित काव्य होने से किन्तु ऐसी प्रकृति प्रेम की उद्भावनाएँ मेघदूत, विक्रमोर्वशीय, रघुवंश, कुमारसम्भव, मालविकाग्निमित्र आदि में प्रभूत मात्रा में विद्यमान है। उदाहरणार्थ मेघदूत में मेघ के मार्ग का वर्णन रघुवंश सर्ग

13 श्लोक, 54-57 में संगम का वर्णन मालविकाग्नि मित्र 3-4, 3-5 कुमार सम्भव 1-41, 3-54, 8-63 इत्यादि।

सौन्दर्य और प्रेम का चित्रण :

NOTES

कालिदास ने सौन्दर्य और प्रेम के विषय में कुछ अपने मौलिक मन्तव्यों को स्थान दिया है, अतएव उनका सौन्दर्य और प्रेम का वर्णन असाधारण हो गया है। सौन्दर्य बाह्य साधनों की अपेक्षा नहीं करता है। सुन्दर वस्तुएं सभी अवस्थाओं में सुन्दर होती हैं। शाकुन्तल में वल्कल पहनने पर भी शकुन्तला की शोभा कुछ विरख हो रही है। सरसिजमनुविद्धं (1-20) कालिदास के लिए अकृत्रिम सौन्दर्य वास्तविक सौन्दर्य है। इदं किलान्याज मनोहरं वपुः 0 (1-18) शकुन्तला का सौन्दर्य अन्याज मनोहर है। अतएव वह अविष्ट कान्ति है, उसका सौन्दर्य निर्दोष है। उन्होंने स्त्री सौन्दर्य के साथ ही पुरुष सौन्दर्य का भी वर्णन किया है। स्त्री के सौन्दर्य में सुकामलता आदि गुण आवश्यक हैं, तो पुरुष के सौन्दर्य में हृष्टता, पुष्टता, व्यायामशीलता आदि गुण आवश्यक हैं। अतएव दुष्यन्त का वर्णन किया है कि- अनवरत धनुर्ज्या0- (2-4) मानव ही नहीं मृगादि के सौन्दर्य का भी उन्होंने वर्णन किया है। ग्रीवा भङ्गाभिरामं0 (1-7) स्त्री के सौन्दर्य में लज्जाशीलता अनिवार्य है। अतएव वह (शकुन्तला) राजा से स्वयं बात नहीं करत है। (वाचं न मिश्रपति0 (1-31) स्त्री का वास्तविक सौन्दर्य सच्चरित्रता है अतएव कुमारसम्भव में पार्वती ने तपस्या के द्वारा अपने सौन्दर्य को सफल बनाना चाहा। इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः (कुमार0 5-2) इस प्रकार के सौन्दर्य का फल प्रेम तथा सौभाग्य है। प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता (कुमार0 5-2)

कालिदास ने प्रेम का चित्रण करते हुए यह सिद्ध किया है कि विषय वासना से युक्त प्रेम वास्तविक प्रेम नहीं है। तपस्या से निखरा हुआ प्रेम ही वास्तविक प्रेम है। अतएव पार्वती अपने शारीरिक सौन्दर्य से शिव को नहीं जीत सकी, परन्तु तपस्या के बाद उसके आगे शिव आत्म समर्पण करते हैं और अपने आपको उसका दास मानते हैं। अद्य प्रभृत्यववताङ्गि तवास्मि दासः, क्रीतस्तपोभि0 (कुमार0 5-86) दुष्यन्त और शकुन्तला का प्रेम बाह्य सौन्दर्य पर आश्रित था और विषय वासना प्रधान था, अतः वह प्रेम सफल नहीं हुआ। वियोग के बाद जब दोनों का प्रेम तपस्या की अग्नि में निखरा तब वह सफल हुआ। कालिदास अनियन्त्रित प्रेम को प्रेम नहीं मानता।

अतएव उसने दाम्पत्य प्रेम को महत्व दिया है। दुष्यन्त के शब्दों में— उसने अपना मन्तव्य प्रकट किया है कि दाम्पत्य प्रेम ही उचित प्रेम है। परस्त्री सम्पर्क हेय है। कुमुदायेव शशाङ्क० (5-28) भारतीय मर्यादा के अनुसार उसने आदरणीय उसी व्यक्ति को माना है जो संयमी है। विकार है तो सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः (कुमार० 1-59)

NOTES

कालिदास के नाटकों की समान घटनायें :

कालिदास के नाटकों की कतिपय घटनाएं आपस में समानता धारण करती हैं। (1) शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय तथा मालविकाग्निमित्रम् की कथा प्रेममूलक है तीनों ही नाटक श्रृंगार रस के हैं। तीनों नाटक सुखान्त हैं। विक्रमोर्वशीय और शाकुन्तल की कथा का आधार पौराणिक कथायें हैं। (2) तीनों नाटकों में नायक नायिका पर कुछ उपकार करता है। उसे किसी प्रकार के कष्ट से बचाता है। दुष्यन्त भ्रमर पीड़ित शाकुन्तला को बचाता है, पुरुरवा उर्वशी को दानवों से छुड़ाता है। नायक के उपकार के फलस्वरूप नायिका उस पर आकृष्ट होती है। नायक-नायिका का प्रथम मिलन होता है। विक्रमोर्वशीय में उर्वशी पहले पुरुरवा पर आकृष्ट होती है परन्तु शाकुन्तल में पहले दुष्यन्त शाकुन्तला पर मोहित होता है। (3) प्रथम मिलन के पश्चात् विदाई के समय नायिका कुछ बहाना बनाकर थोड़ी देर रुकती है और नायक के प्रति प्रेम प्रदर्शन करती है। दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत० (2-12) सव्याजं विलम्ब्य० (1 वा० 231) विक्रमोर्वशीय में उर्वशी का हार लता में फंसता है और वह मुड़कर राजा को देखती है। (4) विक्रमोर्वशीय और शाकुन्तल में द्वितीय अंक में विदूषक का प्रवेश। विदूषक को अपने प्रणय का विवरण देना। (5) नायक छिपकर नायिका के गुप्त प्रेमालाप को सुनता है और उसकी चेष्टाओं को देखता है। शाकुन्तल में अंक 1 और 3 में दुष्यन्त तथा मालविकाग्नि मित्र में अंक 3 में राजा। (6) नायिका अपने प्रिय को प्रेम पत्र लिखती है। शाकुन्तल (313) में शाकुन्तला तथा विक्रमो० (2-12) में उर्वशी। (7) नायिका को नायक से किसी बहाने अलग किया गया है— विक्रमोर्वशीय० में देवदूत उर्वशी को स्वर्ग ले जाता है और शाकुन्तल में गौतमी के आने से वियोग हुआ है। (8) प्रणय का फल पुत्रोत्पत्ति है। विक्रमोर्वशीय में आयुष तथा शाकुन्तल में भरत। दोनों का पिता की दृष्टि से दूर पालन होता है, आयुष मोर से खेलता है, भरत शेर के शावक से। (9) नायक नायिका का मिलन आश्चर्यजनक रूप से होता है। किसी

प्रत्यभिज्ञान की सहायता से मिलन होता है— विक्रमो में संगमनीय मणि से और शाकुन्तल में अंगूठी से। आदि।

NOTES

विक्रमोर्वशीयम्

विक्रमोर्वशीय पर एक दृष्टि :

यह पांच अंकों का एक त्रोटक है। त्रोटक उपरूपक के प्रभेद हैं। इसमें राजा पुरुरवा तथा उर्वशी नामक अप्सरा की प्रणयकथा वर्णित है।

कला की दृष्टि से विक्रमोर्वशीय का स्थान मालविकाग्निमित्र और अभिज्ञान शाकुन्तल के मध्य का है। उर्वशी और पुरुरवा के अतिप्राचीन वैदिक आख्यान को कवि ने भाव, भाषा और शैली की मौलिकता से नवीन रूप दे दिया है। कवि की कल्पना इसमें खूब प्रस्फुटित हुई है। भरत मुनि का शाप, कार्तिकेय द्वारा किया गया नियम, उर्वशी का लतारूप में परिवर्तन, पुरुरवा का उन्माद प्रलाप और पञ्चम अंक का पूरा प्रकरण यह सब कालिदास की कल्पना के द्वारा चित्रित हुए हैं, जिनसे नाटकीय कथा भाग में जान सी आ गयी है। इस नाटक में श्रंगार के दोनों अंक विप्रलम्भ और सम्भोग का उत्तम परिपोष हुआ है। पात्रों की संख्या कम होने पर भी उनका चित्रण मार्मिक रूप से किया गया है। शाकुन्तल की तुलना में इसकी भाषा विशुद्ध तथा मुहावरेदार नहीं है तथापि उसमें प्रसाद तथा सौष्टव पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। इस त्रोटक में छोटे-छोटे छन्दों की विविधता तथा मधुरता बड़ी खूबी से प्रयुक्त हुई है।

प्रथम अंक में उर्वशी के मोहापगम का वर्णन बहुत ही विलक्षण है—

आविर्भूते शशिनि तमसा मुच्यमानेव रात्रि

र्नेशस्यार्चिर्हुतशुज इव च्छिन्नभूष्ठीधूमा ।

मोहेनान्तर्वरतनुरियं लक्ष्यते मुक्तकल्पा

गङ्गारोधः पतनकलुषा गृह्णतीव प्रसादम् ।।

चाँद निकल रहा है, रात अन्धकार के परदे से निकलती जाती है, धुआँ का सिलसिला टूटता जा रहा है, आग अपने ज्वालामय भास्वर रूप में निखरती जाती है, कगारों के गिरने से पानी में जो गन्दगी आ गई थी वह बैठती जा रही है, गङ्गा

विमल—सलिला होती जा रही है। उसी तरह इस सुन्दरी की मूर्च्छा धीरे—धीरे दूर होती जा रही है और इसका रूप निखरता जा रहा है। इन तीन—तीन उपमाओं में जितनी गहराई से सौन्दर्य की अभिव्यक्ति चित्रित की गई है। वह अन्यत्र दुर्लभ है।

कालिदास प्रायः करके उन उपादानों का ही प्रयोग अपने वर्णनात्मक पद्यों में करते हैं। जिनकी सुलभता उनके पात्रों की स्थिति में रहती है। राजा के मुंह से ग्रीष्म का वर्णन करवाना है, तब जंगल की बात कहें तो वह कृत्रिम होगा, उसके मुंह से उसकी राजधानी के प्रासादों में या उपवनों में मिलने वाले उपादानों का ही उपयोग स्वाभाविक प्रतीत होता है।

उष्णालुः शिशिरे निषीदति तरोर्भूलालवाले शिखी
निर्भिद्योपरि कर्णिकारमुकुलान्यालीयते षट्पदः ।
तप्तं वारि विहाय तीरनलिनीं कारण्डवः सेवते
क्रीडावेशमनि चैष पङ्जरशुकः क्लान्तो जलं याचते ॥

गर्मी नहीं सह सकने के कारण मयूर वृक्ष की जड़ के आलवाल में बैठता है। कर्णिकार की कलियों को भेदकर भौरे उसमें छिप रहे हैं, पानी तप गया है, अतः उसे छोड़कर बत्तक कमलिनी के पत्तों में अपना आश्रय बना रहे हैं और क्रीड़ाघर में वर्तमान फिजर में पड़ा सुग्गा प्यास से पानी—पानी चिल्ला रहा है। कितनी स्वाभाविक वर्णन है।

एक वृद्ध आदमी जिसका जीवन नौकरी में ही बीता हो, आशा करता है कि अब कुछ दिनों में इस जीवन से छुटकारा पाकर विश्राम करना है। परन्तु जिसकी वृद्धावस्था ही नौकरों के लिए उपयुक्त समय माना जाता हो, ऐसा भृत्य क्या सोचेगा इस बात का कालिदास ने बड़ा मर्मस्पर्शी वर्णन किया है—

सर्वः कत्ये पयसि यतते लन्धुमर्थान् कुटुम्बी
पश्चात्युत्रैरपहतभरः कल्पते विश्रमाय ।
अस्माकं तु प्रति दिनमियं सादयत्ती शरीरं
सेवा कारापरिणतिरभूत्स्त्रीषु कष्टोऽधिकारः ॥

सभी मनुष्य युवावस्था में धनार्जन का प्रयास करता है तथा बुढ़ापे में अपने कार्यभार को पुत्रों पर डालकर विश्राम की इच्छा करता है। हमारी तो यह नौकरी

कारागार में परिणत हो रही है। स्त्रियों की सेवा में रहना बड़ा कष्टप्रद होता है। उस वृद्ध के पश्चाताप की सादगी में लिपटी तीव्रता बड़ी हृदयग्राहिणी है।

कालिदास की कविता में एक खास बात यह रहा करती है कि वह जिस वस्तु का वर्णन करना चाहते हैं उसे कम में ही पूर्ण करके छोड़ते हैं। यही बात इस निम्नलिखित उद्धरण में देखी गयी है। वह उर्वशी के लिए पागल राजा के मुंह से उर्वशी के विषय में कुछ कहवाना चाहते हैं जिसमें उसके सौन्दर्य का वर्णन है और जो स्मर्यमाण होकर विप्रलम्भ का पोषक हो। एक ही श्लोक से उसके रूप सौन्दर्य का परिचय दे देना है, साथ ही साथ प्राकरणिक विषय भी कहना है देखिये –

पद्भ्यां स्पृशेदूवसुमतीं यदि सा सुगात्री

मेघाभिवृष्ट सिकतासु वनस्थलीषु।

पश्चान्नता गुरुनितम्बतया ततोऽस्या

दृश्यते चारूपदपङ्किकरलक्तकाङ्का ॥ आदि।

कथासार

प्रथम अंक :

पुरातनकाल में पुरुरवा नामक एक चन्द्रवंशी राजा थे। गंगा-यमुना संगम के समीप प्रतिष्ठान नामक नगर उनकी राजधानी थी। वे राजा एक दिन सूर्योपासना करके लौट रहे थे कि एक आर्तनाद उनके कानों में पड़ा। उधर आंखे फेरा तो उन्होंने सुना कि कुछ अप्सरायें चिल्ला रही हैं— हमारी रक्षा करो। हमारी रक्षा करो। स्वर्ग की शोभा स्वरूप हमारी सखी उर्वशी को केशी नामक दैत्य वदी करके लिये जा रहा है। सुनते ही राजा ने उन्हें आश्वासन दिया और कहा— हम आपकी सखी को लौटा लाने जाते हैं। आप हेमकूट पर हमारी प्रतीक्षा करें। इतना कहकर राजा ने केशी का पीछा किया और जब तक उर्वशी की संगिनी अप्सराये हेमकूट पर पहुंची, तब तक वे भी उर्वशी को दैत्य के हाथ से छुड़ाकर वहां आ गये। रथस्थ उर्वशी को जो आतंक से बेहोश हो गयी थी, उसकी सखी चित्रलेखा ने जब आश्वाक्षित किया तब उसकी मूर्च्छा दूर हुई। उर्वशी के होश में आने पर उसकी अप्राकृतिक सुंदरता देखकर राजा का मन मोहित हो गया। उर्वशी भी राजा पर आसक्त हो गयी। हेमकूट

पर राजा का रथ उतर रहा था, रथ के चक्के निम्नोन्नत भूमि पर चलने से रथ को हिला रहे थे। जिससे राजा का कंधा उर्वशी के कन्धों से टकरा गया, इस स्पर्श ने उनके प्रेम के लिए अग्नि में आहुति का कार्य किया। हेमकूट पर पहुंचकर उर्वशी अपनी सखियों के गले लगी। सबने मिलकर राजा को धन्यवाद दिया। इसी बीच प्रभाववश सब वृत्तान्त जानकर दैत्य के हाथों से उर्वशी की रक्षा के लिए इन्द्र ने जिस गन्धर्वराज चित्ररथ को भेजा था, वह वहां आया और पुरुरवा से बोला— महाराज! आपने इन्द्र का भारी कार्य कर दिया है, आप उर्वशी को साथ लेकर इन्द्र से मिल लें। इस अनुरोध को राजा ने यह कहकर टाल दिया कि भाई, अभी इन्द्र से मिलने का समय नहीं है। अनन्तर सभी अपने-अपने गन्तव्य स्थान को गये। राजा के प्रेमपाश में आवद्ध उर्वशी जाते हुए झाड़ी से माला के उलझ जाने का बहाना बनाकर गमन को विलम्बित कर (टेढ़ी कटाक्षों से) राजा को देख रही थी। किसी प्रकार वह हृदय वह हृदय खोकर सखियों के साथ स्वर्ग गयी। इधर राजा भी अपने नगर लौट आया।

द्वितीय अंक :

राजधानी में आने पर भी राजा के दिन उर्वशी के ध्यान में ही बीतते थे। अपनी उत्कण्ठा को शान्त करने के लिए वह एक दिन प्रमदवन में गये। वहां जाने से उनकी हालत और बिगड़ गई। बसन्त की शोभा ने उनके काम को और भड़काया। वहां अतियुक्त लतामण्डप में बैठक वह विदूषक से उपाय सोचने को कहने लगता है। वह अपने प्रति निरनुक्रोश व्यवहार का अपराध उर्वशी के मत्थे मढ़ा। उस समय तक उर्वशी भी अपने को नहीं रोक सकी। वह चित्रलेखा को लेकर राजा के पास चली। दोनों तिरस्करणी में छिपकर राजा की विभ्रम्मवार्ता सुन रही थी। अपने प्रति किये गये निष्ठुरत्वारोप को वह नहीं सह सकी। भूर्ज पत्र पर उनके आरोप के उत्तर में उर्वशी ने निवेदन किया कि मेरी भी वही स्थिति है जो आपकी है यह बात नहीं है कि मैं आपको दुःख में रहकर स्वयं मजे में रहती हूं। इस प्रेम पत्र को प्राप्तकर राजा को बड़ी खुशी हुई। इसके बाद तिरस्करिणी हटाकर राजा के पास आई। राजा ने उसे अपने आसन पर बैठाया। इसी समय आकाश में किसी देव इतने कहा— उर्वशी भरत ने जो अभिनय तुम लोगों को सिखाया है, जिसमें आठों रसों का समावेश है, उसे आज लोक पालों के साथ देवराज देखना चाहते हैं इसलिए तुम्हें शीघ्रता करनी है।

यह सुनते ही उर्वशी चली गई। उसे भी राजा से बिछुड़ने का खेद हुआ लेकिन लाचारी थी। उसके चले जाने पर उसके द्वारा लिखित भूर्जपत्र से राजा ने दिल बहलाना चाहा, किन्तु वह भूर्जपत्र बिदूषक की असावधानी से उड़ गया था। राजा उसकी खोज में बेचैन थे। इसी बीच राजा को ढूँढती हुई रानी औशीनरी वहां आ पहुंची। संयोगवश उसे रास्ते में उड़ता हुआ भूर्जपत्र मिल चुका था उसने आते ही राजा से कहा आर्यपुत्र, परेशान न हो यही तो है वह भूर्जपत्र ? ऐसा कहकर वह भूर्जपत्र राजा को दे देती है। इस प्रसंग से राजा सहम जाता है। उसके मन में यह खटका पैदा हो गया है कि इसने सब बातें जान ली। अतः उसे खुश करने के लिए राजा ने उसके पैरों पर मनाना चाहा। रानी का क्रोध राजा के द्वारा किये गये पादपतन से भी नहीं गया, वह क्रोध लिए ही अपने परिजन के साथ वहां से चली गई। राजा का भी मन छोटा हो गया।

तृतीय अंक :

औशीनरी राजा के पादपतन का लिरस्कार करके चली तो आई परन्तु उसे पश्चात्य होने लगा। उसने चन्द्रमा तथा विशाखा को साक्षी बनाकर प्रियानुप्रसादन नामक व्रत किया जिसमें संकल्प किया कि आज से आर्यपुत्र जिस स्त्री पर आकृष्ट हो या जो स्त्री आर्यपुत्र पर आकृष्ट हो उसके साथ मेरी व्यवहार प्रतिपूर्ण होगा। इस तरह उसने राजा की प्रसन्नता के लिए प्रयत्न तो किया लेकिन राजा के अनुरोध करने पर भी वह उनके पास रूकी नहीं, चली ही जाती रही। इसी समय अभिसारिका के वेष में उर्वशी वहां आई। उसने चित्रलेखा के साथ रानी की सभी बातें सुनी, जिससे उन्हें बहुत आनन्द हुआ। रानी के जाने पर उर्वशी ने राजा के सामने जाकर जय-जयकार की। चित्रलेखा ने राजा से कहा— महाराज : हमारी सखी को आप इस तरह रखें जिससे इसे स्वर्ग की याद व आवे। इस प्रकार कहकर चित्रलेखा चली आई। राजा उर्वशी को प्राप्त कर प्रदोषकालिक चन्द्रमा की किरणों का उपभोग करके अन्त-पुर चले गये। इसके बाद उनके दिन सुखोपभोग में बीतने लगे।

चतुर्थ अंक :

एक समय उर्वशी क्रीड़ाबन्धु राजा के साथ गन्धमादन पर्वत पर विहार करने गयी। वहां विभिन्न क्रीड़ाओं में उनके दिवस बीतने लगे। वहां गंगातीर में एक गन्धर्वबाला क्रीड़ा कर रही थी, राजा उसे एकटक देखने लगे। इतने में ही उर्वशी

रूष्ट हो गयी। भविसव्यता विषम होती है। राजा के उसी अपराण को उर्वशी ने अपना अपमान समझा तथा उस वन में प्रवेश कर गयी जो स्त्रियों के लिए अगन्तव्य था। उस वन में स्त्रियां इसलिए नहीं जाती थीं कि उसमें कुमार रहते थे जिन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर नियम कर दिया था कि जो स्त्री यहां प्रविष्ट होगी वह लता वन जायेगी तथा उसका उद्धार गौरीचरणरागमणि के स्पर्श से ही होगा। यहां उर्वशी लता बन गयी। राजा उसे न खोज सका। राजा व्यग्र हो गये तथा वर्षा ऋतु के आ जाने पर विक्षिप्त जैसे रहने लगे। वह प्रिया को खोजने लगे तथा लोगों से पूछताछ करने लगे। एक दिन उन्हें एक रत्न मिला जिसे उन्होंने ले लिया तथा सोचने लगे यदि मेरे पास मेरी प्रियतमा होती तो वह उसे पहनाते। वे दूढ़ते हुए आगे बढ़े जा रहे थे कि किसी साधु ने कहा— यह रत्न सङ्गमनीय है। इसके प्रभाव से प्रियमिलन होता है। आप यह ले लें। रत्न लेकर राजा आगे बढ़ते हैं। उन्होंने एक लता देखी उसे देखकर राजा को निपटने की इच्छा हुई वह जैसे ही लिपटे वह लता उर्वशी हो गई। राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ तथा उर्वशी को साथ लेकर राजधानी प्रतिष्ठान नगर में प्रेयसी को साथ लेकर वापस आये।

पञ्चम अंक :

राजधानी लौट आने पर प्रकृति ने राजा की बड़ी अभ्यर्थना की। कुछ दिनों के बाद किसी पुण्य पर्व पर सपरिवार राजा सङ्गम स्नान करने गये। संयोगवश उस सङ्गमनीय मणि को कोई दासी तालवृन्त पर रखकर इधर से उधर लिए जा रही थी दूर से किसी गृध्र ने देखा। उसे उस मणि में मांसखण्ड का भ्रम हुआ अतः उसने उसे झपट लिया यह सूचना राजा को मिली, राजा शरासन बाण लेकर जब तक तैयार हुए तब तक वह गृध्र वाण की गति से परे हो गया। राजा ने नागरिकों को आदेश किया कि पक्षियों के निवास स्थल पर मणि की खोज की जाय। उसी समय दरबार में आकर कंचुकी निवेदन करता है कि किसी ने नामांकित अपने वाण से आहत करके गृध्र को मणि के साथ गिरा दिया था वह मणि तथा वाण नहीं है। वाण में अंकित अक्षरों में लिखा था— यह वाण पुरुरवा और उर्वशी के पुत्र कुमार आयु का है। सभी साश्चर्य आनंदित होते हैं। इसी बीच कुमार को लेकर च्यवनाभ्रम से एक तापसी राजा के पास आई। उसने आकर कुमार के बारे में राजा से सभी बातें कहीं। पुत्र की उपलब्धि से राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई। तापसी से मिलने उर्वशी भी दरबार में

आई। तापसी ने उर्वशी से कहा— यह तुम्हारी निधि (पुत्र) मैंने तुम्हें सौंप दिया मुझे जाने की आज्ञा दो, मेरे आश्रम धर्म में बाधा होगी। तापसी चली जाती है। इसके बाद उर्वशी कुछ याद करके रोने लगी राजा ने कारण पूछा तब उर्वशी बोली— महाराज ! मैं अब तक पुत्र को देखने की लालसा से भूली हुई थी : मुझे स्मरण हुआ है, मेरे अभिनय में गड़बड़ी देखकर भरत ने मुझे शाप दिया था कि तुम स्वर्ग में मत रहो। इन्द्र ने कृपा की उन्होंने मेरी प्रीति आप पर देख ली थी, इसलिये उन्होंने कहा कि तब तक तुम हमारे प्रिय मित्र राजा पुरुरवा के साथ पृथ्वी पर रहो जब तक तुम्हारे द्वारा उत्पादित पुत्र का मुख राजा न देख लें। पश्चात् तुमको स्वर्ग आ जाना होगा। वियोग भय से मैंने पुत्र को छिपा दिया। अब आपके साथ मेरे रहने का अवसान हुआ। राजा को इससे बड़ी मनोव्यथा हुई। उन्होंने कहा— ठीक है तुम स्वर्ग जाओ। मैं भी तुम्हारे पुत्र आयु को राजा बनाकर बन जाऊँगा। इसी समय आकस्मात् नारद वहां आ गये। सत्कार के बाद उन्होंने राजा से इन्द्र का संवाद कहा— आप शस्त्र त्याग नहीं करें। मुनियों ने कहा है कि निकट भविष्य में देवदानव युद्ध होने वाला है। आप हमारे युद्ध में सहायक हैं। आपका उसमें रहना आवश्यक है। यह उर्वशी भी आपकी आजीवन सहधर्म नारिणी होगी। इस संवाद ने सभी को आनन्दित कर दिया। नारद ने कुमार आयु का अभिषेक स्वयं किया। सब आनन्दमग्न हो गये। राजा का जीवन भर के लिए उर्वशी जैसी सुन्दर स्त्री तथा पुत्र, उर्वशी को सुरूप स्वामी पुत्र, आयु को माता—पिता का प्यार इस प्रकार सभी अपना—अपना अभीष्ट प्राप्त कर अत्यन्त आनन्दमय जीवन व्यतीत करने लगे।

मालविकाग्नि मित्रम्

मालविकाग्नि मित्र में पांच अंक है। इसका संविधानक जटिल है। पहले अंक में प्रस्तावना के अनन्तर एक विष्कम्भक आया है। उसमें कौमुदिका और बकुलावली नाम की दासियों और गणदास नामक नाट्याचार्य के सम्भाषण में धारिणी रानी के लिए बनवाई हुई सर्पमुद्रिकांकित अंगूठी का उल्लेख करके कवि ने प्रेक्षकों के लिए नायिका विषयक थोड़ा प्रस्ताविक भी दिया है। धारियों का हीन जातिय वीरसेन नामक भाई नर्मदा के किनारे सरहद के किले पर नियुक्त किया गया था। मालविका शिल्पकला में अत्यन्त निपुण होकर रानी धारिणी की उत्तम सेवा करेगी ऐसा

समझकर वीरसेन ने मालविका को दासी बनाकर भेजा था। रानी ने उसे संगीत सिखाने के लिए गणदास की योजना की थी। परन्तु उसकी बुद्धिमत्ता देखकर उसके बड़े कुल के होने का संशय उसको हुआ। एक दिन जब रानी अपने परिजन समेत चित्र देख रही थी तो राजा अग्निमित्र वहां आ गया और मालविका के रूप पर मोहित होकर उसके सम्बन्ध में कुछ जानना चाहा। इससे धारिणी को संशय हुआ और वह राजा की दृष्टि से बचाने के लिए उसकी विशेष सावधानी रखने लगी प्रथमांक के प्रारंभ में राजा और अमात्म प्रवेश करते हैं। उनके सम्भाषण से प्रेक्षकों को मालूम पड़ता है कि मगध में राज्य क्रान्ति हुई है और मौर्य राजा को पदच्युत किया गया है उसके सचिव को काराग्रह में बन्द कर अग्नि मित्र के पिता पुष्य मित्र ने गद्दी ले ली है। इसी समय विदर्भ के राज सिंहासन के विषय में दो चचेरे भाइयों में कलह उत्पन्न हुआ। उसमें से एक भाई माधवसेन अपनी बहन मालविका अग्निमित्र का देने के लिए और उसकी सहायता मांगने के लिए विदिशा जा रहा था, इधर उसके चचेरे भाई यज्ञसेन ने गद्दी छीन ली और अपने सीमान्त अधिकारियों द्वारा उसको कैद करा लिया। अग्निमित्र ने माधवसेन और उसकी बीन को छोड़ने के लिए उसे लिखा। तब उसने उत्तर में कहा कि मेरे साले और मौर्य राजा के मन्त्री को आपने कैद किया है, यदि आप इनको छोड़ देंगे तो मैं भी माधवसेन को छोड़ दूंगा। माधवसेन को पकड़ने की गड़बड़ में उसकी बहन कहीं भटक गयी है। उसको ढूँढ़ने का भी प्रयास करूंगा। अग्निमित्र का विदर्भ का राज्य पादाक्रान्त करना था। इसलिए उसको अनायास यह निमित्त मिल गया। इसके बाद वह विदर्भ पर चढ़ाई करने के लिए अपने सेनापति को आज्ञा देता है। राजकार्य पूरा होने पर अभात्य जाता है और विदेशक प्रवेश करता है। उसके और राजा के सम्भाषण से राजा को मालविका दिखा देने की कोई युक्ति उसे सूझी है ऐसा प्रेक्षकों को पता चलता है। इतने में गणदास और हरदत्त इन दोनों नाट्याचार्यों में विदूषक की कलह प्रियता से लड़ाई शुरू होती है और वे दोनों उसका निर्णय कराने के लिए राजा के पास आते हैं। गणदास को धारिणी का आश्रय प्राप्त होने से हमने कुछ निर्णय दिया तो रानी को क्रोध आवेगा इस कारजा पर यह सुझाता है कि रानी के सामने पंडिता कौशिकी नामक परिवाजिका को इसका मध्यस्थ बनाया जाय। उस प्रस्ताव को दोनों मान लेते हैं और कंचुकी उसे बुला लाता है। रानी को उनका कलह अच्छा नहीं लगता और जब परिव्राजिका कहती है कि “जो स्वतः अत्यन्त निपुण होकर दूसरों को सिखाने में भी

निपुण होता है, वही शिक्षक है।” अतः तुम अपनी—अपनी शिष्याओं की परीक्षा दिलाओं और उनका अंग सौष्टव स्पष्ट दीखता रहे इसलिए नेपथ्य रहित रहें। तब तो उसका संशय और भी पक्का हो जाता है इधर इसी निमित्त से मालविका को नजर से भरपूर देख सकने की राजा की कार्यवाही इस कलह के भीतर छिपी है, ऐसा उसको मालूम होता है और वह राजा को कोसती है कि यदि आप इसी प्रकार का कौशल राजकार्य में दिखावें तो कितना अच्छा हो। तो भी गणदास के आग्रह से मृदंगध्वनि सुन पड़ने पर नृत्य की तैयारी हो गई, ऐसा समझकर सभी वहां जाते हैं।

दूसरे अंक का स्थल राजा के महल की संगीतशाला है। राजा, विदूषक धारिणी और परिव्रालिका के सामने छलिक नामक नाट्यप्रयोग होने वाला है। हरदत्त की अपेक्षा वयोवृद्ध होने के कारण गणदास को अपनी शिष्या का शिक्षण नैपुण्य पहले दिखाने के लिए परिव्रालिका आज्ञा देती है। तब मालविका प्रवेश करती है। विदूषक और राजा को वह उसके चित्र की अपेक्षा अधिक सुन्दर दीखती है। राजा उसके सौन्दर्य का वर्णन करता है—

दीर्घाक्षं शरदिन्दुकान्तिवदनं बाहू नतावंसयोः

संक्षिप्तं निबिडोन्नतस्तनमुरः पार्श्वे प्रमृष्टे इव ।

मध्यः पाणिमितो निर्ताम्ब जघनं पादावरालाङ्गुली

छन्दो नर्तयितुर्यथैव मनसः श्लिष्टं तथास्या वपुः । (मालव0 2, 3)

इसके नयन विशाल हैं, मुख की कान्ति शरच्चन्द्र के समान है, भुज, स्कन्द के पास, किंचित् झुके हुए दीखते हैं, अशिक्षित और उन्नत स्तनों से वक्षःस्थल भरा हुआ है, बगलें दबी हुई हैं, कमर केवल वित्ताभर है। नितम्बभाग मोटा और पैरों की अंगुलियां कुछ टेढ़ी सी है। भाव यह है कि नृत्याचार्य के पसन्द के अनुसार ही इसका शरीर सुघड़ बना है। इसके अनन्तर मालविका अभिनय के साथ पद गाती है। गान समाप्त होने पर मालविका चली जाने को ही थी कि राजा उसको स्वस्थता से भरपूर देख ले इस बहाने विदूषक कहता है, थोड़ा ठहरो। इसमें थोड़ा सा क्रम भंग हुआ है। वह मुझे पूँछना है। धारिणी को मालविका का वहां खड़ा रहना बिल्कुल नहीं भाता परन्तु गणदास के आग्रह से वह चुपचाप बैठी रहती है। “इसमें तुमको कौन सा दोष दिखाई दिया” यह गणदास के पूँछने पर विदूषक कहता है “परीक्षक से पूछो मैं बाद में बताऊँगा”। परिव्राजिका और राजा उसके अभिनय को अभिनन्दित करते हैं।

अब हरदत्त की शिष्या और राजा की तरुण स्त्री इरावती के नाट्य की बारी आती है। परन्तु राजा उत्साहित नहीं है। उसी समय नेपथ्य में मध्याह्न काल होने की सूचना होती है, नाटक अगले दिन के लिए टाल दिया जाता है। इस अंक में मालविका का नाट्य, रंगभूमि में बहुत समय तक रहे इसलिए विदूषक की युक्ति उससे रानी का जलना इत्यादि बातें उत्तम रीति से अंकित की गयी है।

तृतीयांक के आदि में एक छोटे प्रवेशक का प्रारंभ होता है। पंडिता कौशिकी की परिचायिका किसी निमित्त से प्रमदवन नामक उद्यान में जाती है। वहां उसे उद्यान पालिका मिलती है। उनके सम्भाषण से तीन बातें स्पष्ट होती हैं। (1) इरावती के नाट्यप्रयोग देखने पर परिव्राजिका ने निर्णय किया कि दोनों आचार्य अपनी कला में बराबर निपुण हैं परन्तु गणदास को उत्तम शिष्या मिलने के कारण उसकी जीत हो गयी। (2) जिस दिन से मालविका को राजा ने देखा उस दिन से उसका मन उस पर आसक्त हो गया। मालविका की भी इसी प्रकार की दशा हो गई है। (3) उद्यान में बसन्त ऋतु का प्रारंभ हो गया है तो भी सुवर्ण अशोक वृक्ष में फूल नहीं आये, यह बात धारिणी को जताने के लिए उद्यान पालिका राजमहल की तरफ जाती है इसके अनन्तर मुख्य अंक में राजा और विदूषक के सम्भाषण से मालूम होता है कि इरावती ने सखी विदूषिका को भेजकर राजा को कहलवाया है कि बसन्त ऋतु शुरू हो गयी है अतः मैं आपके साथ झूला झूलना चाहती हूं। राजा ने पहले तो स्वीकृति दे दी परन्तु मालविका के प्रति आसक्ति को रानी न जान जाये इस भय से वह उधर नहीं जाता। ततः विदूषक के अग्रह से राजा जाता है, बसन्त की शोभा का वर्णन करता है। तभी मालविका आ जाती है, उसके स्वागत भाषण से पता चलता है कि विदूषक की धूर्तता के कारण धारिणी झूले से गिर पड़ी और उसके पांच में चोंट आई। मालविका एक शिला पर बैठती है। राजा और विदूषक चुपचाप दिफ्कर उसके पीछे खड़े जो जाते हैं। तभी बकुलावलिका सखी उसके पांव में महावर लगाती हुई तथा नूपुर पहनाती हुई चतुराई से मालविका को राजा के प्रति प्रेम करने की प्रेरणा देती है। उसी समय रानी इरावती दासी निपुणिका के साथ वहां आ जाती है तथा चुपचात बातें सुनती है। बकुलावलिका— एवं उपारूढराग उपभोगक्षमः पुरतस्ते वर्तते। मालविका— (सहर्षम्) किं भर्ता ? बकुलावलिका— (सस्मितम्) न तावद्भर्ता। एषोऽशोक— शाखावलम्बी पल्लवगुच्छः। अवतंसयैनम्द।

इसमें राजा और अशोक पल्लव दोनों के लिए समान रूप से प्रयुक्त होने वाले राग और उपभोग इन श्लेष युक्त शब्दों का उपयोग कर बकुलावलिका ने बड़ी चतुराई से मालविका के मुख से प्रेम रूक्त कराया है। राजा छिपकर यह सब सुनकर आनंदित होता है। राजा को प्रगट कराने का कोई कारण चाहिये था अतः विदूषक कहता है अजी ! हमारे राजा के मित्र अशोक (वृक्ष) को लात कारना क्या अच्छा है। उस पर रानी की आज्ञा से ऐसा किया है। इसे आप क्षमा कीजिये। ऐसा कहकर बकुलावलिका मालविका से राजा को नमस्कार करवाती है फिर आनंद रूपी पुष्प मुझे बहुत दिनों से मुझे नहीं मिला है। इसलिए अपने स्पर्शामृत से मेरी इस इच्छा को पूरी करो। राजा के यह कहते ही इरावती आ जाती है, राजा सफाई देता है परन्तु इरावती दुपट्टा मारने को दौड़ती है। राजा गिड़गिड़ाता है, फिर इरावती चली जाती है।

चतुर्थ अंक के प्रारंभ में राजा और विदूषक के भाषण से पता चलता है कि इरावती के कहने पर धारिणी ने मालविका और बहुलावलिका को सुरंग में बन्द कर रखा है तथा इरावती के आदेश के बिना न छोड़ने का वचन भी दिया है। राजा के कहने पर विदूषक उन्हें छोड़ने की युक्ति सोचता है वह रानी को भेंट करने के लिए उद्यान पुष्प लेने जाता है। धारिणी और परिचारिका हवाघर में बैठी हुई थीं वहीं राजा जाता है, उनकी थोड़ी बातचीत होती है तभी विदूषक यज्ञोपवती से अंगूठी को मजबूती से बांधी घबड़ाया हुआ प्रवेश करता है तथा कहता है कि मैं रानी साहब के दर्शनार्थ फूल लेने प्रमदवन गया था और अशोक के फूल तोड़ने के लिये जैसे ही मैंने दाहिना हाथ बढ़ाया उसकी खोह से विकलक सांप ने मुझे डंस लिया है। यह सुन रानी को दुःख होता है वह ध्रुवसिद्धि वैद्य के पास उसे भूजती हैं। वैद्य के पास से संदेश आता है कि यदि सर्प की मुद्रा हो तो उसे उसी से अभिमंत्रित करने पर दूर हो सकता है। ऐसी कोई वस्तु हो तो भेजना। रानी अंगूठी दे देती है। इसके बाद "राजा को ग्रह की बाधा है" इसलिये सभी कैदी छोड़ दिये जाने चाहिये" ऐसा ज्योतिषियों के कहने पर ढवयं धारिणी मालविका एवं बकुलावली को मुक्त कराती है। विदूषक उन्हें प्रमदवन भेजता है जहां राजा मालविका से मिलता है। विदूषक एक शिलातल पर सो जाता है, तभी रानी इरावती उसका हाल-चाल पूछने आती हैं उसी समय "मालविके ! तुम इरावती से भी बढ़कर हो" ऐसा स्वप्न में बड़बड़ाता है। यह सुनकर इरावती क्रुद्ध होती है। तभी उसकी दासी सांप की तरह टेढ़ी लकड़ी उसके

ऊपर फेकती है। वह घबड़ाकर चिल्लाता है तभी राजा मालविका एवं वकुलिका वहां आ जाते हैं। रानी इरावती राजा पर क्रुद्ध होती कि धारिणी की छोटी कथा वसुमति वानर से घबड़ा जाती है, इरावती क्रोध छोड़कर राजा को वहां जाने का आग्रह करती है। तभी नेपथ्य में पांच रात्रि होने के पूर्व ही स्वर्ण अश्येक में कली आ गई है। यह समाचार उद्यानकलिका रानी को देती है इधर बकुलावलिका मालविका को आश्वस्त करती है तथा वे सभी उद्यान की ओर चली जाती है।

पंचम अंक में पुष्पित सुवर्णाशोक को देखने के लिए अलंकृत मालविका और परिव्राजिका सहित धारिणी प्रमदवन की तरफ जाती है तथा राजा को भी वहां बुलाती है। तभी केचुकी माधवसेन की ओर से आई हुई दो संगीतज्ञ दासियों को ले आता है। वे वहां आते ही मालविका को अपने स्वामी की बहन के रूप में पहचान लेती है। माधवसेन के पकड़े जाने पर सुमति (मंत्री) उसे गुप्त रूप से वहां से हटा ले गया था, ऐसा बताती हैं। इसके बाद का हाल परिव्राजिका सुनाती है। आर्य सुमति मेरा बड़ा भाई है। मालविका को लेकर वह एक व्यापारी के संघ में जा मिला। जंगल में जाते समय चोरों ने हमला किया, मेरा भाई मारा गया, मैं मूर्च्छित हो गई। होश में आने पर देखा कि मालविका वहां नहीं है। इधर मैं यहां आकर गेरुआ वस्त्र धारण कर लिए। बीरसेन ने मालविका को छुड़ाया तथा दासी के तौर पर धारिणी देवी के पास भेज दिसा। मालविका दासी नहीं राज कन्या है। मैंने इसके साथ उचित व्यवहार नहीं किया यह सोचकर रानी पश्चाताप करती है। वह मालविका का विवाह राजा से करवाने का निश्चय करती है। अमात्म परिषद् की सम्मति से राजा विदर्भ का राज्य यज्ञसेन और माधव सेन में बांट देता है। तभी पाटलिपुत्र से सेनापति पुष्यमित्र का समाचार आता है— “यज्ञ के घोड़े को सिंधु नदी के दक्षिण तीर पर यवनों ने पकड़ लिया था परन्तु कुमार बसुमित्र ने उनको हराकर उसे छुड़ाया है। इसलिए क्रोध छोड़कर रानियों के साथ आप यहां आवें। अपने पुत्र का पराक्रम सुनकर धारिणी खुश होती है। वह इरावती की सम्मति से मालविका को राजा को सौंप देती है। दोनों का विवाह हो जाता है। इधर परिव्राजिका माधवसेन के पास जाने की आज्ञा मांगती है परन्तु राजा और रानी उसे यहीं रहने का आग्रह करते हैं अन्त में भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

यूनिट – 3

अभिज्ञान शाकुन्तल से सम्बन्धित प्रश्न

NOTES

अभिज्ञान शाकुन्तलम्द की कथावस्तु :

कथावस्तु के पूर्व अभिज्ञान शाकुन्तलम्द” इस नाटक की संज्ञा पर विश्लेषणात्मक प्रकाश डालना उचित होगा—

अभिज्ञान शाकुन्तलम्द नाम करने वाले मनीषियों के अनुसार शकुन्तला विषयक नाटक जिसमें अभिज्ञान (अंगूठी) मुख्य रूप से वर्णित है। अभिज्ञायते अनेन इति अभिज्ञानं शकुन्तलां अधिकृत्य कृतं नाटकं शाकुन्तलम्द। अभिज्ञान प्रधानं शाकुन्तलम्द अभिज्ञानशाकुन्तलम्द। यहां मध्यम पद लोपी समास समझना चाहिये।

अभिज्ञान शकुन्तलम्द नाम करने वाले मनीषियों के अनुसार अभिज्ञान के वर्णन से युक्त शकुन्तला विषयक नाटक। अभिज्ञान के द्वारा स्मृत शकुन्तला का विवाह अर्थोपचार से नाटक भेद। अभिज्ञानेन शकुन्तला यस्मिन् तन्नाटकम्द अभिज्ञान शकुन्तला (व्यधिकरण बहु ब्रीहि) अभिज्ञानेन स्मृता शकुन्तला अभिज्ञान शकुन्तलम्द (मध्यम पद लोपी समास)।

महाकवि कालिदास ने महाभारत एवं पद्मपुराण की शकुन्तला एवं दुष्यन्त के चरित्र को अपने ही ढंग से संवारा, सजाया विकसित किया एवं उत्कृष्ट रूप में चित्रित किया है। इसकी कथावस्तु इस प्रकार है—

प्रथम अंक : सर्वप्रथम कवि अष्टमूर्ति शंकर का एक ही श्लोक में गुणगान करते हुए ग्रीष्म ऋतु की मनोहरता का वर्णन करता है। तत्पश्चात् प्रकृति का यथेष्ट ज्ञान रखने वाला, सौन्दर्य प्रेमी दुष्यन्त मृगया खेलते हुए कण्व के तयःपूत आश्रम में प्रवेश करता है। वहां पर नायक तीन मुनि कन्याओं को देखता है। जिनमें सबसे अधिक शकुन्तला के रूप पर मोहित होता है। वहां पर अपनी वास्तविकता को छिपाने वाला दुष्यन्त भ्रमर कार्यकलाप से पीड़ित शकुन्तला की रक्षा का ढोंग पीटता है। मधुर वार्तालाप से वह शकुन्तला के जन्म की कथा, तात कण्व के योग्यवर को देने के संकल्प आदि को जानकर उसे सर्वथा अपने द्वारा ग्रहण करने योग्य समझकर सरस

एवं मधुर संवादों से उस शकुन्तला को आकृष्ट करने का भरसक प्रयत्न करता है। नायिका भी उसके लिए लालायित दिखलाई गयी है। यह गोष्ठी एक वनैले हाथी के बर्बरतापूर्ण कृत्य के कारण समाप्त हो जाती है।

द्वितीय अंक : अन्य निमित्त से सम्पादित शकुन्तला की विविध चेष्टाओं को अपना ही कारण समझने वाला कामी दुष्यन्त शिकर के पक्ष का भरसक समर्थन करने वाले सेनापति एवं नीरचीर विवेकी विदूषक के द्वारा ठीक से पहचान लिया जाता है कि राजा शकुन्तला के प्रेम के किस शिखर पर है। तदनन्तर विदूषक से दुष्यन्त शकुन्तला के मनोहारी लावण्य और रमणीय कार्यकलापों का वर्णन करता है। इसी बीच तपोवन में रूकने की इच्छा रखने वाले दुष्यन्त से दो तपस्वी वहां पर ही कुछ दिन रहकर आश्रम के निवासियों के यज्ञादि कार्यों में होने वाले विघ्नों को दूर करने की प्रार्थना करते हैं। दूसरी ओर देवी बसुमति का संदेशवाहक देवी के पारण के दिन राजा की उपस्थिति की प्रार्थना करता है। राजा अपनी तपोभूमि में उपस्थिति की अनिवार्यता को विचार कर विदेषक को राजधानी भेज देता है। भेजते समय वह उसे समझा देता है कि अभी तक जो शकुन्तला के प्रेम व मनोहारिता का वर्णन उसके द्वारा किया गया वह परिहास ही था यथार्थ नहीं।

तृतीय अंक : इस अंक में काम पीड़ित दुष्यन्त छिपकर शकुन्तला के पूर्व राग जनित राग का पता लगा लेता है। लताकुंज निर्मित गृह में पड़ी हुई सखियों के द्वारा सहायता प्राप्त, विरह विदग्ध शकुन्तला, कमलपत्र पर नाखूनों से प्रेम पत्र लिखती है। इसी समय छिपा हुआ दुष्यन्त प्रत्यक्ष होता है और दोनों का गन्धर्व विवाह हो जाता है। संभोग के इस क्रिया के प्रारंभ की स्वीकृति देने के लिए दोनों सखियां पर्णकुटी से बाहर चली जाती है। यज्ञ में विघ्न डालने वाले राक्षस ही राजा को अपने कर्तव्य की ओर प्रेरित कर पाते हैं और राजा धनुष बाण लेकर अपने श्लाघनीय रक्षावृत में रत हो जाता है।

चतुर्थ अंक : चतुर्थ अंक के विष्कम्मक से ज्ञात होता है कि राजा राजधानी चला गया है। उसके विरह में व्यथित हृदया शकुन्तला आये हुए अतिथि दुर्वास को जानने में अपने को पूर्णतः असमर्थ पाती है। परिणामस्वरूप उसे मिलता है एक शाप का समुद्र। प्रियंवदा अनुनय विनय से प्रसन्न दुर्वासा से पुनः मिलती है, महर्षि दुर्वासा प्रियम्वदा को शाप से मुक्ति का उपाय भी सुझाते हैं। बाहर से आने वाले महर्षि कण्व

को शकुन्तला के सुपात्र के प्रति हुए प्रेम की कहानी सुनकर महान् हर्ष होता है और वह नायिका को राजा के पास भेजने के लिए तैयार करते हैं, इस अंक का उत्तरार्द्ध उस शकुन्तला के विछोह के कारण दुखित है जो कि वृक्षों के सिंचन के पूर्व जलपान तक नहीं करती है जो कि वहां के पशु-पक्षियों से अपना अटूट सम्बन्ध स्थापित किये थी और जिसके वियोग में मृग अपना खाना भूल जाते हैं, मयूर अपने नृत्य का विस्मरण कर देते हैं और लतायें भी आंसुओं के परित्याग से अपने हृदय के अन्तःस्थल में छिपी हुई विरह की गाथा को सूचित करने का प्रयत्न करती है।

पंचम अंक : इस अंक में गौतमी, शारंगरव और शारद्वत शकुन्तला के साथ दुष्यन्त के राजदरबार में पहुंचते हैं। अभिज्ञान (अंगूठी) के खो जाने के कारण राजा दुर्वासा के शाप की अवस्था से मुक्त नहीं हो पाता है। अनेक संवाद होते हैं परन्तु राजा शकुन्तला को स्त्रीरूप में स्वीकार नहीं करता है। अन्त में शारंगरव शकुन्तला को छोड़कर चल देता है। अपने अपमान से परितप्त शकुन्तला को आकाश से आई स्त्री के आकार की एक ज्योति उठाकर ले जाती है।

षष्ठ अंक : इस अंक में खोई हुई मुद्रिका धीवर के द्वारा प्राप्त कर ली जाती है। राजा को मुद्रिका की प्राप्ति से शकुन्तला के प्रथम सम्पादित प्रेम कथा की स्मृति जागृत हो जाती है और विदूषक के पास रहकर कभी वह शकुन्तला का चित्र अंकित करता है, कभी दिन-रात नींद न आने का दुःख रोता है, कभी अपनी धर्मपत्नी के त्याग देने के कारण पितरों को होने वाले हार्दिक कष्ट को व्यक्त करता है। तो कभी शकुन्तला को अपने घर बुला लेने की सन्दर अवधि जो कि क्रूर हाथों द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दी गयी थी, का स्मरण करता है इसी बीच इन्द्र का सारथि मार्ताल अदृश्य रूप धारण करके माधन्य को पकड़कर उसका गला दबाने के बहाने से राजा में वीर रस का संचार करता है और उसे अपने रथ में बैठाकर इन्द्र को कष्ट देने वाले राक्षसों को मारने के लिए स्वर्ग के लिए प्रस्थान करता है।

सप्तम अंक : इस अंक में राक्षसों को मारकर लौटने वाले दुष्यन्त गन्धमादन पर्वत पर स्थित मारीच ऋषि के दर्शन के लिए वहां पर रथ रोकने की आज्ञा देते हैं। जब वे आश्रम में प्रविष्ट होते हैं तो खेलते हुए बालक के हाथ से गिरने वाली अपराजिता औषधि (गण्डा) उठाकर बालक को दे देते हैं। राजा के इस व्यवहार को देखकर महर्षि मारीच के आशीर्वाद का ध्यान करके शकुन्तला की सखियां आश्चर्य

चकित हो जाती हैं। इसी समय मैले-कुचैले वस्त्र पहनें, खुली बाहों वाली, विरह कृश तन शकुन्तला का मिलन होता है। शकुन्तला भरत एवं दुष्यंत महर्षि के दर्शन के लिए उपस्थित होते हैं महर्षि आशीर्वाद देते हैं तथा भरत वाक्य के साथ नाटक का सुखान्त समापन होता है।

NOTES

शाकुन्तल की साहित्यिक समीक्षा :

शाकुन्तल की शैली – महाकवि कालिदास यदि संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं तो उनकी कृति शाकुन्तल कृतियों में श्रेष्ठ है। इसका कारण है सरल परिष्कृत और प्रसाद गुण युक्त उनकी शैली और इस शैली का अत्यन्त विकसित एवं परिष्कृत रूप अभिज्ञान शाकुन्तल में दृष्टिगोचर होता है। सुकुमार शब्द-विन्यास, सूक्ष्म व्यञ्जना पद्धति, छन्दों की श्रुति, मधुरता आदि ने रमणीयता का मानो साम्राज्य सा फैला दिया है। ये कथित गुण वैदर्भी रीति की सम्पत्ति है वे वैदर्भी रीति के सर्वश्रेष्ठ लेखक हैं। वैदर्भी रीति की निम्नलिखित विशेषताएं शाकुन्तल में बिखरी पड़ी है –

माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैरचना ललितात्मिका।

अवृत्तिरल्यवृत्तिर्वा बैदभीरीतिरिष्यते। (सा. दर्पण)

शाकुन्तल की शैली के विशेष गुण हैं –

1. कृति में प्रसाद और माधुर्य की बहुलता है।
2. भाषा सरल सरस मनोहर अदीर्घ-समास वाली, अक्लिष्ट तथा अदुरुह है।
3. ध्वन्यात्मक संक्षिप्त शैली का ही सर्वत्र प्रयोग है। किसी विषय का विस्तृत वर्णन न कर कवि सूक्ष्म व्यञ्जना करता है।
4. कथोपकथन उपयुक्त पात्रानुकूल भाषा वाले तथा स्वाभाविक हैं। दीर्घ नहीं, नाटकीय है। मुहावरेदार हैं।
5. वर्णन सजीव कलात्मक तथा आकर्षक है।
6. छन्दों और अलंकारों का प्रयोग सर्वोत्तम हुआ है। उपर्युक्त विशेषताओं के उदाहरण एक नहीं अनेक देखे जा सकते हैं यथा—

(1) गुण— क. सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्द (1-20)

- ख. क्व वयं क्व परोक्षमन्मथः (2-18)
- ग. तव कुसुम शत्वं शीतरश्मित्वमिन्दोः (3-3)
- (2) भाषा— क. गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चात् संस्तुतं चेतः। (1-34)
- ख. अनाघ्रातं पुण्यं किसलयमलूने कररु है। (2-20)
- ग. इदं किलाव्याज मनोहरं वपुः (1-18)
- (3) ध्वन्यात्मकता (क) अये लन्धं नेत्र निर्वाणम्। (प्र. अंक)
- (ख) आर्ये सम्यगनुबोधितोऽस्मि। अस्मिन् क्षणे विस्मृतं खलु मया तत्।
- (ग) भो भो राजन्, आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः।
- (4) कथोपकथन (क) राजा और सखियों का संवाद (प्र० अंक)
- (ख) राजा और विदूषक का संवाद (द्वि० अंक)
- (ग) राजा और शाङ्करख का संवाद (पञ्चम अंक)
- (5) वर्णन — (क) ग्रीवा भंगाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः। 1-7
- (ख) नीवारा शुक गर्भ कोटर मुख भ्रष्टा स्तरुणामधः। 1-10
- (ग) यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनाम्। 4-2
- (6) छन्द, अलंकार— शाकुन्तल में 24 छन्दों का प्रयोग है। छोटे-छोटे छन्दों के प्रयोग में कवि की अभिरूचि है। अलंकारों में उपमा, यमक, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, स्वाभावोक्ति, काव्यलिंग, अप्रस्तुतप्रशंसा आदि का प्रयोग अधिक किया गया है।

कालिदास की शैली जैसा विकसित एवं परिष्कृत रूप शाकुन्तल में दीख पड़ता है। वैसा अन्यत्र नहीं। कवि ने भावों का विशद वर्णन न करके शैली का नवीन रूप उपस्थित किया है। वे दुष्यन्त के शकुन्तला के आकृत्रिम, सरसिजसम शरीर पर प्रथम दृष्टिपात से उत्पन्न हृदयगत भावों का विशद वर्णन न करके एक वाक्य में ही व्यंजना कर देते हैं। अग्र लन्धं नेत्र निर्वाणम्। आदि।

शाकुन्तल में रस :

शाकुन्तल श्रंगार रस प्रधान नाटक है। इसमें सम्भोग श्रंगार अंगी और विप्रलम्भ, करुण, वीर, अद्भुत, हास्य, वात्सल्य और शान्त अन्य रस हैं। नाटक के सुखान्त होने से यद्यपि विप्रलम्भ का प्रसार अधिक है, मुख्य रस संयोग श्रंगार स्वीकार करना ही उपयुक्त होगा।

NOTES

संयोग श्रंगार : प्रारम्भिक तीन अंक संभोग श्रंगार प्रधान हैं—

1. इदं किलाब्द्याज मनोहरं वपुः (1-18)
2. सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम् (1-20)
3. चलाचाङ्कां दृष्टिम् (1-24)
4. अपरक्षित कोमलस्य (3-21)

सप्तम अंक भी संभोग प्रधान है। नायक-नायिका का पुनर्मिलन होता है।

विप्रलम्भ श्रंगार — विप्रलम्भ श्रंगार का प्रसार तो सर्वत्र है। द्वितीय अंक, तृतीय अंक और षष्ठ अंक में तो सर्वत्र विप्रलम्भ का ही वर्णन है।

क. रम्यं दृष्टि यथा पुरा प्रकृतिभिर्न० (6-5)

ख. कार्या सैकत लीन है सभिथुना ० (6-17)

रस परिपाक की दृष्टि से अभिज्ञान शाकुन्तल सर्वोत्तम माना गया है। कवि ने रस में रसरज श्रंगार के दोनों पक्षों का वर्णन करके अपनी महान् प्रतिभा का परिचय दिया है। जैसा कि राजशेखर ने कहा है—

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।

श्रंगारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु।।

शाकुन्तल में काव्य सौन्दर्य :

- (1) शाकुन्तल में कवि ने लौकिक और अलौकिक अन्तः और बाह्य, आदर्श और यथार्थ, सभी पक्षों पर जो कवित्व की सुषमा से सम्बन्ध रखते हैं विचार किया है। “कवि की कला की कसौटी है, मार्मिक स्थलों व प्रसंगों की पहचान।” पंडित रामचन्द्र शुक्ल का वह कथन नितान्त प्रामाणिक है। शाकुन्तल में

भ्रमरकृत (प्र०अं०) राजा व शकुन्तला का मिलन (तृ० अंक) शकुन्तला को विदा और कण्व तथा प्रकृति (च. अंक) अभिज्ञान शाकुन्तल के हृदयग्राही स्थल है।

(2) शाकुन्तल में बाह्य और अन्तः प्रकृति का अत्यन्त सुन्दर और सामंजस्य युक्त वर्णन है। मानव अन्तः प्रकृति और बाह्य स्थूल प्रकृति में सामान्य समान घटना चक्र वर्णित है। यथा—

(क) ईषदीच्चुम्बितानि भ्रमरैः सुकुमार के सरशिखानि

(ख) क्षौभं केनवित् इन्दुपाण्डुतरुणा माङ्गल्य भावि० (4-5)

(ग) उद्गलितदर्भकवलामृग्यः परित्यक्त नर्सन मयूराः।

अपसृत पाण्डुपुत्रा मुञ्जन्त्य श्रुणीवलताः (4-12)

(3) सौन्दर्य और प्रेम के साधक इस महाकवि ने सौन्दर्य और प्रेम के स्वकीय विचारों को शाकुन्तल में अत्यन्त कौशलपूर्वक प्रकट किया है। सुन्दर वस्तु सभी अवस्था में सुन्दर ही रहती है—

“अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम्द”

“किमिव हि मधुराणांमण्डनं नाकृतीनाम्द”

“सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्द”

“अनाघ्रातं पुण्यं किसलयमूनं कररू है।”

प्रेम का स्वरूप तपस्या से निखरता है वासना से नहीं। प्रेम तो पूर्व जन्म के संस्कार जन्य है। वह बाह्य रूप पर आधारित नहीं—

(क) वसने परिधूसरे दधाना० (7-21)

(ख) भावस्य राणि जननान्तर सौहृदानि (5-2)

शाकुन्तल की अदृष्य रमणीयता :

अभिज्ञान शाकुन्तल विश्व के समस्त साहित्य में विशेष समादृत है। यदि सम्पूर्ण विश्व कृतियों में इस ग्रन्थ रत्न को श्रेष्ठतम माना जाये तो अनुचित नहीं। विश्व के सहृदय साहित्यिक जौहरियों ने इस अद्वितीय ग्रन्थ रत्न को परख कर जन-जन को इसका गुण ग्राहक बना दिया है। आज अभिज्ञान शाकुन्तल की

रमणीयता किसे नहीं रमाती ? देश में ही नहीं विदेश में भी इसकी रमणीयता ने अपनी अमिट छाप मानव हृदय पर डाली है। जर्मन कवि गेटे तो अभिज्ञान शकुन्तल के अनुवाद को ही पढ़कर नाच उठे थे तथा उनके हृदय से वरबस निकल पड़ा था—

And all by which the soul is charmed reaptured, feasted sed ?

wouldst thou the earth and heaven itself on one sole name combine ?

I name thee O Shakuntala and all atonce is said.

इस प्रशस्ति का संस्कृत रूपान्तरण म.प्र. वासुदेव विष्णु मिराशी ने इस प्रकार किया है—

वासन्तं कुसुमं फलं च युगपद् ग्रीष्मस्य सर्वं च यद्

यच्चान्यन्मन सो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम्।

एकीभूतमपूर्वं पूर्वमथवा स्वर्लोक भूलोकयो—

रैश्वर्यं यदि वाञ्छसि प्रियसखे शाकुन्तलं सेव्यताम्।।

भारतीय वाङ्मय के किसी ग्रन्थ ने यदि पाश्चात्य जगत् के विद्वानों को आकृष्ट किया है तो वह है अभिज्ञान शाकुन्तलम्। इसकी विशेषताओं का विश्लेषण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है जिसमें महाकवि की नाट्यगत वैशिष्ट्य का चाक दर्शन सुलभ है।

भाषा— कालिदास के शेष जीवन की अभूतपूर्व रचना शाकुन्तलम् उनकी नाट्य कला का चरम परियाक है। नाटक की भाषा अत्यन्त प्राञ्जल, परिमार्जित, परिष्कृत और प्रसादपूर्ण है। उनमें क्लिष्टता अथवा दूरान्वय का दोष नहीं है। सर्वत्र मधुर लालित्य का वातावरण विद्यमान है। बीच-बीच में चुस्त और मुहावरेदार वाक्यों के प्रयोगों ने भाषा में जान सी डाल दी है। सम्पूर्ण चित्र सजीव सा हो उठता है। उदाहरण के लिए जब अनुसूया प्रियंवदा से यह कहती है कि दुर्वासा के शाप की बात शकुन्तला के कानों तक न पहुंचने पाये तब प्रियंवदा उत्तर देती है— क इदानीं उज्जोदकेन नवमालिकां सिञ्चति। भला कौन ऐसा होगा जो जूही की लता को खौलते हुए पानी से सींचेगा। इसी प्रकार के सैकड़ों उदाहरण सुलभ हैं। जो भाषा को उच्चता प्रदान करते हैं।

NOTES

शैली : कालिदास की शैली जैसा विकसित एवं परिष्कृत रूप शाकुन्तल में दीख पड़ता है। वैसा अन्यत्र नहीं। कवि ने भावों का विशद वर्णन न करके शैली का नवीन रूप उपस्थित किया है। वे दुष्यन्त के शकुन्तला के अकृत्रिम, सरसिज सम शरीर पर प्रथम दृष्टिपात से उत्पन्न हृदयगत भावों का विशद वर्णन न करके एक वाक्य में ही व्यञ्जना कर देते हैं। अये लब्धम्द नेत्रनिर्वाणम्द। नाटक में उपमा उत्प्रेक्षा स्वभावोक्ति, अर्थान्तर न्यास आदि अनेक अलंकारों का उपयुक्त प्रयोग किया गया है। जिनमें कहीं भी क्लिष्टता, कल्पना खींचातानी तथा इरान्वय आदि दोषों का दर्शन नहीं होता।

चरित्र : कालिदास का चरित्र चित्रण आदर्शोन्मुख होते हुए भी सर्वथा स्वाभाविक और सजीव है। उसमें कृत्रिमता का लेश भी नहीं है। दुष्यन्त और शकुन्तला के चरित्र चित्रण में कवि ने अतिशय चातुर्य का परिचय दिया है। दुष्यन्त को प्रभाववान्, मधुरभाषी, बलिष्ठ एवं पराक्रमशाली दिखाया गया है। उसको धर्मपारायण, प्रजावत्सल और उदारचरित धीरोदान्त नायक के रूप में दिखाया गया है। उन्हें केवल कामवासना के वशीभूत नहीं कहा जा सकता। वे एक सच्चे प्रेमी हैं जो प्रेम के महत्व को जानते हैं। अनादर को भी आदर के रूप में चुपचाप सह लेते हैं। वे रसिक, सहृदय और चतुर हैं।

गृगया विहारी होने के साथ-साथ चित्रकार एवं कवि भी हैं। फलतः शाकुन्तलम्द के दुष्यन्त का चरित्र पद्मपुराण के दुष्यन्त से पवित्र और उच्चकोटि का है। शकुन्तला के चरित्र चित्रण में तो कवि ने अपनी अद्भुत प्रतिभा का उपयोग किया है। शकुन्तला का अप्रतिम सौन्दर्य अव्याज मनोहर वपु एवं मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य सम्भवः" न प्रभा तरल ज्योतिरुदेति वसुधातलात्" आदि से स्पष्ट हो जाता है। शकुन्तला परम स्निग्ध रूप परिधान धारण कर हमारे सम्मुख उपस्थित हुई है। उसका सौन्दर्य अतिशय आकर्षक होने के साथ-साथ स्वाभाविक है, उसका चरित्र अत्यन्त मधुर है। वह स्नेह की मूर्ति और कर्तव्यपारायण है। उसका स्नेह चेतन-चेतन सबके प्रति समान है। तात कण्व और अपनी सखियों प्रियम्बदा और अनुसूया के प्रति निष्कल और विश्वस्त शकुन्तला का प्रेम उसके उदान्त चरित्र का परिचायक है। इस प्रकार कवि को शकुन्तला के चरित्र-चित्रण में जो सफलता मिली है, वह विश्वनाटक साहित्य में कम ही उपलब्ध है।

रस : इस परिपाक की दृष्टि से अभिज्ञान शाकुन्तलम्द सर्वोत्तम माना जाता है। कवि ने रसरज श्रंगार के दोनों पक्षों का वर्णन करके अपनी अद्भुत प्रतिभा कौशल का परिचय दिया है। जैसा कि राजशेखर ने लिखा है—

एकोऽपि जीवयते हन्तः कालिदासों न केनचित्।

श्रंगारे ललितोद्गारे कालदासत्रयी किमु।।

काव्य का चरम लक्ष्य करुणा है। काव्य में करुण रस का परिपाक इतना प्रभावशाली किया गया है कि मानव और प्रकृति दोनों ही बिना अश्रुपात के बचे नहीं है। इसका प्रत्यक्ष दर्शन चौथे अंक में शकुन्तला की विदाई के अवसर पर स्पष्ट रूप से मिलता है।

प्रेम और सौन्दर्य :

अभिज्ञान शाकुन्तल में प्रेम और सौन्दर्य की भावनाओं के जो कोमल और सुन्दरतम चित्र प्रस्तुत किये गये हैं अन्यत्र दुर्लभ हैं। शकुन्तला जैसे सुन्दर पात्र की सृष्टि करके कवि ने मानों नाटक रचना करने वाले के समक्ष पात्र सर्जना का सुन्दरतम उदाहरण प्रस्तुत किया है। कालिदास की शकुन्तला सौन्दर्य और प्रेम की सजीव प्रतिमा है। अन्य विषयों के समान सौन्दर्य वर्णन में भी कालिदास की दृष्टि अत्यधिक प्यापक थी। उन्होंने मानव सौन्दर्य के साथ—साथ पशु सौन्दर्य का भी भव्य चित्रण प्रस्तुत किया है।

प्रकृति :

कालिदास प्रकृति वर्णन में भी सबसे आगे निकल गये हैं। कालिदास मानव के सुख—दुख के साथ प्रकृति का सहयोग प्राप्त कर अनुभूति को तीव्र बनाने में अद्वितीय थे। मूक प्रकृति को नाटक के भीतर आवश्यक और प्रधान स्थान दिया गया है। प्रकृति को मनुष्य रूप में रखकर उसका रूपकात्मक वर्णन नहीं किया गया है, प्रत्युत प्रकृति को प्रकृति रखकर ही उसे ऐसा सजीव ऐसा प्रत्यक्ष ऐसा व्यापक और ऐसा अन्तरंग बनाकर नाटक के इतने कार्य सिद्ध कराये गये हैं जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। चौथे अंक में शकुन्तला के प्रस्थान के समय उसकी सखियों तथा हरिणियों के साथ तथा तपोवन के अन्य पशु पक्षी एवं वृक्ष लता तक को कलाकार प्रकृति का जो मार्मिक दृश्य उपस्थिति किया गया है। वह अद्भुत है।

समाज का दर्पण :

अभिज्ञान शाकुन्तल में महाकवि तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक जीवन का सच्चा चित्र प्रस्तुत किया गया है। एक सच्चा साहित्य वही हो सकता है जो अपने युग का वास्तविक प्रतिनिधित्व करता है। शाकुन्तल की सबसे बड़ी विशेषता उसका संदेश है। दुष्यन्त और शकुन्तला प्रणय के प्रथम आवेग में विवाह कर लेते हैं किन्तु प्रेम का वास्तविक मूल्य उन्होंने नहीं पहचाना था, अतः कवि को एक उपदेश देना था—

अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात्संगतं इहः।

अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम्।।

(शाकुन्तल)

प्रेमी और प्रेमिका को पश्चाताप और वियोग की करालाग्नि में हृदय शुद्धि करनी पड़ती है। तब कहीं वह सच्चे स्नेह की सरिता तक पहुंचते हैं न बिना विप्रलम्बेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते”। कवि रवीन्द्र ने ठीक ही कहा है— शकुन्तला के आरम्भ के सौन्दर्य की मंगलमय परिणति से सफलता प्राप्त कर मर्त्य को अमृत के साथ सम्मिलित करा दिया है।

वस्तुतः उत्कृष्ट वर्णन शैली, मधुर भाषा, उत्तम चरित्र चित्रण उत्कृष्ट रस परिपाक, विलक्षण प्रकृति वर्णन आदि की दृष्टि से शाकुन्तल के गुणों पर मोहित होकर विद्वानों ने इसे सभी नाटकों में श्रेष्ठ स्वीकार किया है। इसीलिए कहा है— तत्र रम्या शकुन्तला।

इस प्रकार न केवल काव्य सौन्दर्य अपितु मानव जीवन के सुन्दर यथार्थमय भावों से युक्त अभिज्ञान शाकुन्तल के चौथे अंक के चार श्लोक विशेषतया द्रष्टव्य हैं जो 4/6, 4/17, 4/18 एवं 4/19 में लिखित हैं। प्रकृति से मानव का इतना निकटतम सम्बन्ध एवं प्रेम अन्यत्र दुर्लभ है। इसीलिए आलोचक बरबस यह कह पड़ते हैं—

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।

तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कः तत्र श्लोक चतुष्टयम्।।

यूनिट – 4

ऋतुसंहार एवं मेघदूत से सम्बन्धित प्रश्न

प्रस्तावना :

कालिदास प्रकृति के कवि हैं। ऋतुसंहार में षड् ऋतुओं का मनोरम एवं विशद वर्णन अद्भुत एवं आनन्ददायक है। मनुष्य एवं प्रकृति का तादात्म्य बनाये रखना, प्रकृति के उन्मुक्त हास एवं विकास की धारा को अक्षुण्ण रखना, पर्यावरण संरक्षण आदि की प्रेरणा एवं शिक्षा मिलती है कालिदास की इन अप्रतिम रचनाओं से।

NOTES

ऋतुसंहारम्

कालिदास कृत काव्यों में ऋतुसंहार निम्न श्रेणी का ग्रन्थ माना जाता है, कई विद्वानों को सन्देह है कि कदाचित् उक्त काव्य कालिदास का नहीं है। परन्तु उनकी यह शंका निर्मूल है। यह अनेक प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। 473 ईसवी के आसपास मन्दसोर की प्रशस्ति में 'ऋतुसंहार' के कुछ श्लोकों की छाया है। इससे यही सिद्ध होता है कि यह काव्य ईसा की 5वीं शताब्दी से पहले का है। कालिदास को ऋतु वर्णन अत्यन्त प्रिय है। उन्होंने अपने काव्यों में किसी न किसी ऋतु का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। कुमारसम्भव में बसन्त का, विक्रमोर्वशीय और मेघदूत में वर्षाऋतु का, शाकुन्तल में ग्रीष्म का तथा रघुवंश में सभी ऋतुओं का वर्णन कवि ने किया है। सरस्वती देवी की आराधना करते समय प्रकृति के वर्णन को छोड़कर और कौन सा सरस एवं सरल विषय कवि अपने लिए चुनेगा। इस तरह के काव्य में किसी कथानक का सम्बन्ध न रहने से तब स्फूर्ति रहती है तब श्लोक बनाकर पीछे से जोड़ सकते हैं।

तत्कालिक काव्य रचना, समस्यापूर्तियां, प्रतिमाला स्पर्धा, (अन्त्याक्षर प्रतियोगिता) आदि मनोविनोदात्मक कार्यों में सन्ध्या का समय बिताया जाता था। उक्त स्थानों पर समय-समय पर विविध कलाभिज्ञ, चतुर, विदूषी, वेश्याओं को भी आमन्त्रित किया जाता था। ऐसे प्रसंगों पर काव्य रचना और कला प्रवीणता प्रदर्शित करने के लिए परस्पर प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हो जाती थी। ऋतु वर्णन के समान विषय ऐसे समय ही सूझते हैं। जिस समय ऋतुसंहार रचा गया होगा उस समय कालिदास

को किसी राजा का बाश्रय नहीं मिला होगा। क्योंकि काव्य में इस प्रकार का संकेत उपलब्ध नहीं है। कुछ श्लोक एक ही कल्पना को लेकर दुहराये गये हैं तो कुछ श्लोक अपनी प्रिया को लक्ष्य करके लिखे गये हैं। कई श्लोकों में स्त्रियों के सहवास में तुम्हारा ग्रीष्मकाल सुखदायी हो ऐसा भाव पुरुषों को संबोधित करके प्रकट किया गया है। इन सब बातों से पता चलता है कि कालिदास ने यह खण्डकाव्य नागरिक समाज में बनाया होगा।

कथावस्तु :

ऋतु संहार काव्य में कुल छः सर्ग हैं। प्रत्येक सर्ग में 16 से लेकर 28 श्लोक हैं। इन सर्गों में ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर और बसन्त, इन छः ऋतुओं का क्रमानुसार वर्णन किया गया है। प्रत्येक ऋतु के वर्णन में उस ऋतु का वृक्ष लताओं और पशु पक्षियों पर होने वाला प्रभाव तथा उसके आगमन से कामी जनो की चित्तवृत्ति और व्यवहार में दिखाई देने वाले परिवर्तन तथा उनके हृदयों में तरह-तरह के विचारों का उत्थान, इन सबका कवि ने सुन्दर वर्णन किया है। उदाहरणार्थ ग्रीष्म ऋतु का वर्णन देखिये—

खेर्मयूखैरभिताषितो भृशं विदद्यमानः पथि तप्तपांसुभिः।

अवाङ्मुखो जिस्भगति श्वसन्मुहुः फषी मयूरस्य तले निषीदति ॥

(ऋतु0 1-13)

इस श्लोक में कवि ने बताया है कि “सूर्य की अत्यन्त प्रखर किरणों द्वारा ऊपर से और गरम-गरम धूल से नीचे से गरमी पहुंचने के कारण झुलसा हुआ और व्याकुलता के कारण जल्दी जल्दी श्वास छोड़ने वाला वक्रगति सर्प अपना सहज जाति बैर भूलकर मयूर की छाया का सहारा ले रहा है। ग्रीष्म काल की चांदनी बहुत भली मालूम होती है। ठंडे पानी में डूबे रहने के लिए जी चाहता है। रात में भवन के ऊपर खुली छत पर प्रियासहित कामोद्दीपक सुरापन और वीणावादन में कामी जन रात्रि का समय बिताते हैं। निशा में स्वच्छ सफेद घरों के ऊपर छतों पर सुख निद्रालीन रमणियों की मुखकान्ति देखकर चन्द्रमा लज्जा से फीका पड़ जाता है। इत्यादि वर्णन द्वारा कवि ने ग्रीष्म ऋतु में होने वाला कामी जनो का चित्तवृत्ति जन्म परिणाम दिखाया है।

ग्रीष्म के बाद वर्षा का आगमन होता है। उस समय प्यासे चातक पक्षियों की याचना पर जल भार विनम्र मनोहर गर्जध्वनि करते हुए मेघ जल बरसाते हैं और पथिकों को अपनी प्रेयसियों का विरह सताता है। इत्यादि विषय पर इस ऋतु में वर्णन किये गये हैं, शरद का वर्णन देखिये –

NOTES

काशांशुका विकचपद्ममनोज्ञवक्त्रा

सोन्माद है सरवन्पुरनाद रम्या ।

आपक्व शालि रूचिरा नत गात्र यष्टिः

प्राप्ता शरन्नववधूखि रूपरम्या ॥ (ऋतु0 3-1)

सफेद काश की सुन्दर साड़ी पहने हुए, विकसित कमल ही जिसका मनोहर मुख है, उन्मुक्त हंसों की ध्वनि ही जिसके नूपरों की आवाज है। पके हुए धान ही जिसका सुन्दर कृश शरीर है। ऐसी नव वधू सदृश रमणीय इस शरद ऋतु की रातें चन्द्र की प्रभा से, नदियां हंसों से, सरोवर सारस पक्षियों से, वनस्थली पुष्पभार से विनम्र सप्तपर्ण वृक्षों से तथा उपवन मालती पुष्पों से श्वेत दिखाई पड़ रहे हैं।

चतुर्थ तथा पंचम सर्ग में कवि ने हेमन्त तथा शिशिर का वर्णन प्रस्तुत किया है। किन्तु यह वर्णन पहले तीन सर्गों के समान मनोहर नहीं है। इन ऋतुओं ने प्रकृति सुन्दरी के नेत्राह्लादक पुष्पादि अलंकार नहीं दिखाई पड़ते इसलिए कवि ने केवल चार-पांच श्लोकों में ही प्रकृति का वर्णन समाप्त कर दिया है। अन्य श्लोकों में युवा-युवतियों की प्रेम लीला का वर्णन है। अन्त में वसन्त का वर्णन अधिक रमणीय हुआ है। इस ऋतु में वृक्ष सपुष्प, सरोवर पद्मयुक्त, कामिनियां कामवश, पवन परिमल युक्त, सन्ध्या समय सुखकारी तथा दिन रमणीय होते हैं। ऐसा कवि ने एक ही श्लोक में इस ऋतु की रमणीयता का दर्शन कराया है। यह वर्णन अत्यन्त मनोहर है। स्वाभाविकता की अच्छी मात्रा दीख पड़ती है। वसन्त-समीर का वर्णन देखिये—

आकम्पयन् कुरपुमिताः सहकारशाखा

विस्तारयन् परभृतस्य बचांसि दिक्षु ।

वायुर्विवाति हृदयानि हरन्नराणां

नीहार पात विगमात् सुभगो वनान्ते ॥

(ऋतु0 6-22)

कुहरा नष्ट हो जाने से सुखकारी वायु बौरे हुए आमों की डालियों को हिलाकर कोकिल के कलकूजन को चारों तरफ फैलाकर लोगों के हृदयों को अपनी ओर खींच रहा है। इत्यादि वर्णन है। इस श्लोक में कालिदास रचित उत्तरकालीन काव्य के गाम्भीर्य, लालित्य आदि गुण दृष्टिगोचर होते हैं। उपर्युक्त वर्णनों से तथा ऋतुसंहार के अन्य श्लोकों द्वारा यह ज्ञात होता है कि कवि का मन बाह्यसृष्टि तथा श्रृंगार की ओर अधिक झुका हुआ है, ऋतु संहार में कवि ने स्वभावोक्ति की ओर विशेष ध्यान दिया है। कई जगह उपमा, उत्प्रेक्षा रूपक आदि अलंकारों का अच्छा निर्वाह हुआ है। किन्तु उत्तरकालीन काव्यों के अलंकारों की रमणीयता दृष्टिगोचर नहीं हो तो। अर्थान्तरन्यास जैसे ललित और मधुर अलंकार का उदाहरण ऋतुसंहार में एक भी नहीं है। कवि की शब्द रचना में भी लालित्य नहीं आ पाया है। कई जगह पुनरुक्ति, तडिल्लता शक्रधनुर्विभूषिताः पयोधनाः (2-29) इत्यादि स्थलों में लतादि शब्दों का अनावश्यक प्रयोग कहीं कहीं व्याकरणनियमभंग आदि दोष भी मिलते हैं। उक्त काव्य की रचना के समय, कालिदास की आंखों के आगे वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धाकाण्ड में वर्णित वर्षा तथा शरद् का वर्णन रहा होगा। तुलना के लिए शब्द प्रयोग और कल्पना का साम्य नीचे दिए गये उदाहरण में द्रष्टव्य है—

रामायण—

बालेन्द्रगोपान्तरचित्रितेन विभाति भूमिर्नवशाद्वलेन ।

गाजानुपृक्तेन शुकप्रभेण नारीब लाक्षोक्षितकम्बलेन ।।

(4-28-24)

ऋतुसंहार —

प्रभिन्नवैडूर्यनिमैस्तृणाङ्कुरैः समाचिता प्रोत्थितकन्दलीफलैः ।

विभाति शुक्लेतररत्न भूषिता वराङ्गनेव क्षितिरिन्द्रगोपकैः ।।

चमकते हुए मरकत कणि के समान हरे तृष्णांकुरों से छाई हुई और निकले हुए कन्दलीदलों से व्याप्त भूमि वीरवधूरियों से रक्तवर्णमणियों के अलंकारों से अलंकृत सुन्दर ललना जैसी शोभित हो रही है।

वर्षा ऋतु में हरित तृण पर लाल रंग की वीरवधूटियां दिखाई देती हैं। उनका वर्णन रामायण में लाख की उपमा द्वारा तथा ऋतुसंहार में लाल मणि की उपमा द्वारा

किया गया है। कालिदास की उपमा सरल है। फिर भी वाल्मीकि ने नूतन हरित तृण को भूमि के हरित वसन की मनोहर उपमा दी है। कालिदास वहां तक पहुंच भी नहीं सके। रामायण के अन्य श्लोकों में भी कवि ने नई-नई कल्पनाओं तथा उत्प्रेक्षादि अलंकारों का यथोचित निर्वाह करके ऋतु वर्णन को अधिक से अधिक रमणीय बनाया है। ऋतु संहार का ऋतुवर्णन इसके आगे कुछ नीरस सा मालूम पड़ता है। फिर भी इस काव्य द्वारा कवि के मार्मिक सृष्टि निरीक्षण की उज्ज्वल नैसर्गिक प्रतिभा की तथा विकासोन्मुख कला नैपुण्य की कल्पना हमारे साथ आती है। इससे यह सिद्ध है कि इस काव्य द्वारा कालिदास प्रथित हुए होंगे।

उपमा कालिदासस्य –

“उपमा कालिदासस्य” यह कथन प्रसिद्धि स उठकर अब लोकोक्ति में परिणत हो गया है। जब कालिदास की उपमा का प्रश्न उठता है तो प्रायः प्रत्येक सहृदय उनके एकमात्र उपमालंकार के प्रयोग नैपुण्य की बात नहीं करते अपितु उनकी एक विशेष प्रकार की अनुकरणीय सालंकार प्रकाश भंगिमा की बात करते हैं। कालिदास की उपमाओं की चारुता धर्मचक्षुओं को ही नहीं अपितु अन्तःचक्षुओं को भी उद्भाषित करने वाली है।

उपमा प्रभृति अर्थालंकारों की पृष्ठभूमि में किसी न किसी प्रकार की स्मृति व्याप्त रहती है। कवि जहां किसी नारी का सौन्दर्य चित्रित करना चाहता है। वहां वह नारी कोई वास्तविक नारी नहीं होती। किसी वास्तविक नारी के अवलम्बन से कवि के अन्तर में जो वासनामयी नारी मूर्ति जागृत हो उठती है, उसी को कवि सुर पर सुर, रेखा पर रेखा, और रंग पर रंग लोकर प्रकट करने की चेष्टा करता है। दीपशिखा के रूप में निर्दिष्ट इन्दुमती अध्येताओं को इतना चारुतम लगी कि उन्होंने कवि को ही दीपशिखा का उपनाम दे दिया—

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ

थं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा ।

नरेन्द्र मार्गाट्ट इव प्रपेदे

विवर्ण भावं स स भूमिपालः ।।

प्रकृति को मानव जीवन के नैकट्य में स्थापित करते समय अपनी उपमाओं द्वारा कवि ने चिदचित् की भेद रेखा को विलीन कर दिया है। इस सम्बन्ध में वे बहुत कुछ अद्वयवाद के विश्वासी हैं। प्रकृति का वर्णन करते समय उन्होंने उसे नारी सौन्दर्य की छाया में ग्रहण नहीं किया। मेघदूत में वेत्रवती की चंचल उर्भियां—

“वधू भंग मुखमिव” चित्रित हुई हैं। सुदक्षिणा के दिलीप के मध्य सुशोभित होने वाली गाय की शोभा को— “दिनक्षयामध्यगतेव सन्ध्या” के रूप में चित्रित करके प्रकृति और मनुष्य के भेद को समाप्त ही कर दिया है। अनेकशः ऐसे उद्धरण और उपलब्ध है। जिनसे ज्ञात होता है मानो कवि के पास उपमानों का अक्षय भण्डार था जहां से वे मनोवांछित उपमान प्राप्त कर सकते थे।

कवि की उपमाओं का चमत्कारिक आनुपतिक सम्बन्ध के निपुण संस्थापन में है। रूप सादृश्य द्वारा गुण—कर्म के इस आनुपतिक सम्बन्ध के निपुण संस्थान में वक्तव्य विषय मधुर से मधुरतर, गम्भीर से गम्भीरतर हो उठा है। कवि की प्रत्येक उपमा में इसी प्रकार का स्थिति व्यापकता का गुण विद्यमान है।

देश काल पात्र की समस्त अवस्थाओं के अनुरूप श्लोक के शब्द—शब्द में अर्थ भर देने वाली कालिदास की उपमाओं का औचित्य भी नक्षणीम है। शाकुन्तल में शकुन्तला ने अपने योग्य पति को प्राप्त किया है, इस एक बात को दिष्ट्या “धूमाकुलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता” रूप से कहकर कवि ने देशकाल और पात्र के अनुसार उचित स्थान पर उचित वस्तु के निदर्शन में अपनी योग्यता स्पष्ट की है।

अपने मन के भावों को कितना स्पष्टता करने में सहृदय कवि मानस का संधान पा सकता है, कवि की अनुभूमि का सबल—सूक्ष्म सौकुमार्य तथा उसका वैचित्र्य और विराट तत्व एक दूसरे के निकटतम हो सकते हैं। यह कालिदास भलीभांति जानते थे। नन्दिनी का अनुकरण करने वाले की— “शुतेरिवार्थ स्मृतिरन्वगच्छत्” अर्थात् श्रुति का अनुसरण करने वाली स्मृति में दी गयी उपमा शास्त्रीय उपमा है। इस प्रकार की उपमाएं उनके काव्य के वातायन स्वरूप है।

उपमा प्रभृति अर्थालंकारों का एक प्रधान तत्व है— अचेतन जड़ प्रकृति की चेतन के अनुरूप कल्पना करना। इसे हम मानवीकरण कह सकते हैं। इसमें भी कालिदास का एक स्पष्ट स्वातंत्र्य है। उसमें एक वास्तविक अनुभूति है। वल्कलावृता

“सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं” “अधरः किसलयरागः” शकुन्तला की तपोवन भी तपोवन दुहिता है। नगाधिराज हिमालय दुहिता भी” पर्याप्त पुष्प-स्तवकस्तनाभ्यां” संचारिणी पल्लविनी लतेव” उमा भी प्रकृति दुहिता है।

कालिदास की उपमा की यह प्रधान विशेषता रही है, कि उन्होंने अपनी कल्पना को किसी सीमाबद्ध पथ पर संचालित नहीं किया। उन्तुंग पर्वत, दुर्गम वनराजि सीमाहीन वारिधि, विराट् आकाश आदि-आदि सभी ने ग्रहण किया था कवि के वासना राज्य में आश्रय। प्रकृति के माध्यम से उन्होंने ऐसे चित्र अंकित किए जिसे हम किसी आवरण के परिधान से आच्छन्न करके देखना चाहते हैं। किन्तु उनके विचारों की मंगलमय शुभ्रता उच्च आध्यात्मिक स्तर पर हमें श्रद्धाभक्त कर देती है।

मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः

शैलाधिराजतनया न यर्या न तस्थौ।।

अन्त में इतना कहा जब सकता है कि कालिदास के काव्यों में अलंकार शोभा वृद्धि के लिए प्रयुक्त हुए हैं व्यर्थ भाराक्रान्त करने के लिए नहीं। उनकी करिता कामिनी अनावश्यक भाराक्रान्त मन्थरगतिना गम्य नहीं है। अपितु “स्फरचन्द्रतारकाविभावरी” की भांति सहृदयों के मानस को आकृष्ट करने वाली है।

महाकवि के काव्य में उपमायें मण्डल के ज्योतिरन्ध्रो की भांति व्याप्त है। इन समस्त उपमा प्रयोगों से कालिदास का काव्य हमारे अन्तःस्थल को झकझोर देते हैं। उसके भीतर हम अनुमणि करते हैं कि कवि की एक विशेष सत्ता का, एक अभीष्ट स्पर्श का। A.B. Keith के शब्दों में हम इस समीक्षा का अन्त कर सकते हैं—

Of figures of speech kalidasa excels in Indian opinion in simile and praise is just.

मेघदूतम्

एक सौ बीस श्लोकों के इस खण्डकाव्य में कवि ने अपना उत्कृष्ट रचना कौशल दिखलाया है। इसमें कवि की सौन्दर्यान्वेषणी दृष्टि और कला मर्मज्ञता स्पष्ट रूप से सिद्ध होती है। कुशल चित्रकार जिस प्रकार तूलिका की सहायता से चार छः रेखाओं में सुन्दर चित्र बना देता है। उसी तरह कवि ने बहुत ही अल्प शब्दों में मृदुल और अत्यन्त रमणीय उदार भावों का चित्र उतारने में कमाल किया है। इस खण्ड

काव्य में कई एक ऐसे स्थल हैं, जिन पर कुशल चित्रकार भावपूर्ण चित्र तैयार कर सकता है। इस काव्य की शब्द रचना का संगठन चमकते हुए हीरों की तरह निर्दोष तथा उज्ज्वल है। इसमें अर्थरूपी रत्नों को, उपमा, उत्प्रेक्षा और अर्थान्तरन्यास आदि सुन्दर आलंकारों में जड़ देने ने उसकी आभा और भी द्विगुणित हो गई है। यदि कालिदास ने केवल मेघदूत की ही रचना की होती तो भी वह संसार के महाकवियों की श्रेणी में उच्च स्थान प्राप्त कर सकते थे। यह काव्य अत्यन्त सरस तथा अत्युत्कृष्ट है। इसका कथानक निम्नलिखित है—

पूर्वमेघ —

अलकाधिपति कुबेर के एक सेवक यक्ष ने प्रभारवश कुछ अपराध कर दिया कुबेर ने उसे एक वर्ष के देश निर्वासन का दण्ड दिया। शाप से प्रताड़ित यक्ष अलकानगरी छोड़कर जनकात्मजा के सना से पवित्र जल वाले रामगिरि नामक पर्वत पर जाकर रहने लगा। आठ महीने व्यतीत होने पर आषाढ़ का प्रथम दिन आया। आकाश में बादल घिर आये, इस समय वर्षा ऋतु के आरम्भ में मेघदर्शन से यक्ष का पत्नी वियोग दुःख भड़क उठा। मेरी पत्नी की भी मेरे विरह में यही दशा हुई होगी, ऐसा सोचकर विरही यक्ष ने मेघ को दूत बनाकर अपनी कुशल वार्ता प्रियतमा के पास भेजने का निश्चय किया। धुआं, आग, पानी, हवा आदि तत्वों से बना हुआ अचेतन मेघ मेरा सन्देश किस प्रकार ले जा सकेगा यह संशय कामार्त यक्ष के मन में नहीं आया। उसने उसी पर्वत पर नवविकसित कुटज पुष्पों से मेघ की पूजा तथा स्तुति की और उसे अलकानगरी को जाने का मार्ग बताया। माल क्षेत्र, आम्रकूट पर्वत, विन्ध्याचल की प्रचण्ड चट्टानों में बिखरी हुई नर्मदा का वर्णन करके यक्ष ने मेघ को दशार्ण देश की राजधानी विदिशा का मार्ग बताया।

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रान्तिहेतो—

स्त्वत्सम्पकात्पुनकितमिव प्रौष्पुषैः कदम्बैः।

यः पण्यस्त्री रति परिमलीद्गारिभिर्नागराणा

मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभियौवनानि। (मेघ0 25)

विदिशा के निकट ही नीचैः पर्वत है। मेघ ! वहां थोड़ी देर ठहर कर विश्राम कर लेना। उस पर कदम्ब के बड़े-बड़े फूल खिले देख तुझे ऐसा मालूम होगा, जैसे तुझसे भेंट होने के कारण यह पर्वत पुलकित हो उठा है। नीचैर्गिरि पर सुन्दर

शिलागृह हैं। जिनमें वेश्याओं के अंगराग की सुगन्ध फैलती है। जिससे विदिशावासी नागरिकों का उग्र यौवन प्रकट होता है।

पादन्यासक्वणितरशनास्तत्र लीलावधूतै-

रत्नच्छायाखचित वलिभिश्चामदैः क्लान्तहस्ताः ।

वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान् प्राप्य वर्षाग्रबिन्दु-

नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकर श्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् ।।

उस उज्जैन में महाकालेश्वर के मन्दिर में नृत्य करते समय जिनकी करधनी बज रही है। वे हाथों में रत्नजटित दण्डयुक्त चंवरों को हिलाने से थकी हुई वेश्यायें तेरे वर्षा के प्रथम जल की बूंदों से नखों के घावों में सुख पाकर तुझ पर लम्बे कटाक्ष पात करेंगी।

इसके उपरान्त मार्ग में मिलने वाली गंभीरा नदी देवगिरि नामक पर्वत पर स्थिति कार्तिकेय का मन्दिर, चर्मष्वती (चंबल) नदी दशपुर (आधुनिक मंदसोर) ब्रह्मावर्त देश, कुरुक्षेत्र, सरस्वती और गंगा आदि नदियां तथा अन्त में हिमालय में बसी हुई अलकानगरी का बहुत थोड़े में किन्तु अत्यन्त रमणीयता के साथ कल्पनावैचित्र्य के बाहुल्य से किया गया है। रामगिरि से लेकर अलकानगरी तक मिलने वाले पर्वत देश, नगर, ग्राम, वन उपवन, नदी आदि का वर्णन अत्यन्त रमणीय होने से यह भाग अत्यन्त चिन्ताकर्षक हुआ है।

उत्तरमेघ-

उत्तरार्द्ध में कवि ने अलकानगरी का तथा यक्ष गृह का उल्लेख करते समय अपनी प्रतिभा द्वारा एक नूतन सृष्टि की रचना कर कल्पना शक्ति को स्वच्छन्द विहार करने की अवसर दिया है। आरम्भ में यक्ष अलकानगरी का वर्णन करके कहता है, हे मेघ ! अलकानगरी के भवन गगनचुम्बी हैं। वे सुन्दर चित्रों से सुसज्जित हैं। वहां मृदंग बजा करते हैं और वे रत्नखचित हैं। वहां के निवासी सदैव तरुण रहते हैं और यौवन का स्वच्छन्द आनन्द लूटते हैं। वहां वृक्ष और लतायें पुष्प, फल के भार से नम्र, मयूर आनन्दित तथा चन्द्रमा के प्रकाश से युक्त रात्रियां होती हैं। वहां महलों के स्फटिक मणियुक्त पृष्ठ भाग पर बैठकर तेरी गम्भीर ध्वनि के समान ही निकलती हुई मृदंग ध्वनि को सुनते हुए यक्ष जन अपनी प्रेयसियों के साथ मदिरा का पान करते

NOTES

हैं। वहां चित्र-विचित्र वढियां वस्त्र, अलंकार के लिए पुष्प, पल्लव, पैरों में लगाने के लिए लाक्षाराग इत्यादि स्त्रियों के श्रृंगार की सारी सामग्री कल्प वृक्षों से मिलती है। अलका में भगवान् शंकर निवास करते हैं। इसलिए मदन अपने धनुष्य और वाण का उपयोग कर नहीं पाता। तथापि चतुर सुंदरियां मदन का यह कार्य अपने अमोघ कटाक्षों द्वारा पूरा करती हैं। इसी रम्य नगरी में यक्षराज कुवेर के प्रासाद की उत्तर तरफ मेरा घर है। जिसमें इन्द्रधनुष के समान सुन्दर वन्दनवार लगे हुए हैं। जिनके कारण मेरा घर तुम्हें दूर से ही दिखाई पड़ेगा। मेरे उस घर के उद्यान में मेरी प्रियतमा का लगाया हुआ सहज ही में हस्तगत होने वाला पुष्पभार से नम्र एक मन्दार का वृक्ष है। उसी के निकट एक सुन्दर बावली है। जिसकी सीढियां मरकतमणि की है और उसमें हमेशा सुवर्ण कमल खिले रहते हैं। इस वाणी के फूल पर नीलमणि तथा सुवर्णकदली कुंजवेष्टित क्रीड़ा पर्वत है। वहीं माधवी मण्डप के समीप तुझे अशोक और बकुल वृक्ष दीख पड़ेंगे। इन वृक्षों के बीच में रत्नखचित एक सुवर्णस्तम्भ पर स्फटिक शिला है। उस पर प्रतिदिन सायंकाल को मेरी प्रिया कंकणनाद मधुर करतल शब्द से मयूर को नृत्यकला की शिक्षा देती है। इन सब चिहनों पर ध्यान रखते हुए मेरे घर का पता तू लगाना। उस क्रीड़ा पर्वत पर बैठकर यदि तू अपनी विद्युत् दृष्टि से मेरे घर का अन्तर्भाग देख लेगा तो तुझे यही दिखाई देगा -

आलोके ते निपततिपुरा सा बलिव्याकुला वा

मत्सादृश्यं विरहतनुवा भावगम्यं लिखन्ती।

पृच्छती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां

कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति।।

(मेघ- 90)

जिस समय तू मेरे घर पहुंचेगा, उस समय मेरी प्रियतमा मेरी कुशल कामना निमित्त देव आराधना कर रही होंगी। अथवा विरव्यथा से दुर्बल मेरे शरीर का अनुमान करके उसी भाव को चित्रित करने वाला मेरा चित्र खींच रही होगी या पिंजड़े में बैठी हुए मधुर बोलने वाली मैना से पूछ रही होगी- अरि रसिके ! क्या तुझे भी कभी मालिक की याद आती है। तुझे तो वे बड़ा प्यार करते थे या वह मैले कपड़े पहने अपनी गोद में वीणा रखकर मेरे सम्बन्ध में रचे हुए किसी गीत को गा रही होगी और आंसुओं की झड़ी से भीगे हुए वीणा के तारों को पोंछकर पूर्वाभ्यस्त मूर्छना

(स्वर लहरी) को बार-बार भूल जाती होगी या भूमि पर बिखरे हुए पुष्पों को गिन-गिन कर मेरी शाप की अवधि को गिन रही होगी। विरह से अत्यन्त कृश और अभ्यंग स्नान न करने से उसके केशों की बुरी दशा हो गयी होगी। वे रूखे हो गये होंगे और कपालों तक लटक रहे होंगे। वस्त्र और अलंकार का पहनना, जिसने छोड़ रख हो, अत्यन्त दुःख से जो पर्यंक पर लेटी हुई हो ऐसी मेरी प्रिया को देख तुझे भी उसकी इस दशा पर तरस आवेगा और तू भी नूतन जल कण रूपी अश्रु बहावेगा। उस समय अगर मेरी प्यारी सो गयी हो तो एक पहर तक गर्जना न कर उसके जागने की प्रतीक्षा करना। कारण यह है कि महान् प्रयास से प्राप्त स्वप्नावस्था में वह मेरे गादालिंगन का आनंद अनुभव कर रही होगी। उस पर तू गम्भीर गर्जना द्वारा विघ्न न डालना। जब वह तेरे जल बिन्दु सम्मिश्रित शीतल वायु के झोंकों से जाग उठे तब मेरा कुशल संवाद कहते हुए यह संदेश सुनाना —

श्यामास्वंगं चकित हरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भूविलासान्
हन्तैकस्यं क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ॥

(मेघ0 109)

प्यारी ! मैं अहर्निश रूपमाधुरी का चिंतन किया करता हूँ और अपने नेत्र कृतार्थ करने के लिए भिन्न-भिन्न वस्तुओं में तेरी समता ढूँढने में लगा रहता हूँ। तेरे कोमल अंग की समता मुझे प्रियंगुलता में मिल जाती है। तेरे स्वच्छ मुख की समता चन्द्रमा में मिल जाती है। तेरे केशों की समता मोरा के पैरों में मिल जाती है। तेरी भ्रुकुटि-विलास की समता नदी की पतली-पतली चंचल लहरों में मिल जाती है। परन्तु निष्ठरु ! तेरे सर्वांग की समता किसी एक वस्तु में कहीं भी एकत्र देखने को नहीं मिलती।

त्वामालिख्य प्रणय कृपितां धातुरागैः शिलाया
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्द ।
अस्त्रैस्तावन्मुहुरपचितैर्द्रष्टि रालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः ॥

हे प्रिये ! मैं कभी कभी मन ही मन यह अनुमान करता हूँ कि तू रूठकर मानिनी बनी बैठी हुई होगी। अतः तुझे मनाने के लिए पत्थर की शिला पर गेरु ते तेरी तस्वीर खींचता हूँ। परन्तु ज्यों ही मैं अपना मस्तक तेरे चरणों पर रखना चाहता हूँ। त्यों ही मेरी आंखों में आंसू उमड़ आते हैं और मेरी दृष्टि बन्द हो जाती है। मुझे तेरा वह चित्र दिखाई नहीं देता। मुझे मालूम न था कि कृतान्त इतना क्रूर तथा निर्दयी है जो हम दोनों के इस काल्पनिक संयोग को भी सहन नहीं कर सकता।

स्वप्न में तेरा दर्शन होते ही तेरे आलिंगन सुख के लिए मैं अपने हाथ फैला देता हूँ। मेरी यह करुणाजनक अवस्था देखकर वन देवताओं के नेत्रों से वृक्षों के पल्लवों पर मोतियों के समान अश्रुबिन्दु गिरते हैं। मैं बड़े धैर्य और विवेक से यह विरह दुःख सहन कर रहा हूँ। प्यारी ! तू भी मेरी तरह उसे सहन कर। क्योंकि –

कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥

सुख दुःख सदा एकरस नहीं रहता। जिसे दुःख मिलता है उसे बाद में सुख भी मिलता है। रथ के पहिये की तरह ये दोनों क्रम से फिरा करते हैं। कभी सुख सामने आता है, कभी दुःख। भगवान् विष्णु के अपनी शेषशय्या त्याग कर उठते ही मेरे शाप का अन्त हो जायेगा। केवल चातुर्मास्य की अवधि है। तब तक तू यह दुःख सहन कर। स्वतंत्रता प्राप्त करते ही मैं तुझे अपने साथ ले शरद ऋतु की शुभ ज्योत्सना में नाना प्रकार की प्रणय क्रीड़ा का अनुभव करूंगा। हे मेघ ! मेरी प्रार्थना पर ध्यान देकर अथवा मुझ पर प्रेम होने के कारण अनुकम्पा करते हुए मेरा काम पूरा कर दो। वर्षाकाल में अत्यन्त सुन्दर बनकर तू अपने वांछित स्थान को चले जाना। मेरे समान तुझे अपनी प्रेयसी विघुल्लता से कभी वियोग न हो। मेघ संदेश पहुंचाता है तब तक वर्षाकाल भी समाप्त हो जाता है तथा शापावधि समाप्त होते ही यक्ष का प्रेयसी से मिलन हो जाता है।

इस काव्य में सर्वत्र विप्रतम्भ श्रृंगार वर्णन का साम्राज्य दिखाई देता है। विशेष कर उत्तर भाग में यक्ष अपनी और अपनी पत्नी की विरहावस्था का वर्णन जिन

श्लोकों में करता है वे श्लोक अत्यन्त करुणोत्पादक है। विरहिणी यक्षपत्नी का वर्णन करते समय कालिदास ने एक आदर्श गृहणी का उत्तम चित्र अंकित किया है। वह अन्य नायिकाओं की तरह सिर्फ सुन्दरी ही नहीं अपितु विविधकला प्रवीण, सहृदयता, सच्ची प्रेमिका और आदर्श पतिव्रता है। ऐसी स्त्री की विरहावस्था का चित्र कवि ने अत्यन्त कौशल से विचित्र किया है।

इस काव्य में सर्वत्र मन्दाक्रान्ता नामक छन्द का ही प्रयोग किया गया है। इस छन्द के नामानुसार मन्दगति होने से विप्रलम्भ श्रृंगार के वर्णन के लिए यह वृत्त सर्वथा उपयोगी भी है। कालिदास से पहले के कवियों ने इस वृत्त में रचना विप्रलम्भ की नहीं की थी। हरिषेण नामक कवि की प्रयाग स्थित शिला-स्तम्भ की प्रशस्ति में एक स्थान पर मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग हुआ है परन्तु इस छन्द को लोकप्रिय बनाने में कालिदास को ही श्रेय जाता है।

मेघदूत का समीक्षण समाप्त करने के पूर्व इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि वह रागगिरि पर्वत कहां हैं जहां से यक्ष ने मेघ द्वारा प्रियतमा के प्रति संदेश भेजा था। इस सन्दर्भ में विद्वानों में मतभेद हैं। कतिपय विद्वान् मध्यप्रदेश के सरगुजा जनपद के अन्तर्गत रामगढ़ नामक पर्वत को रामगिरि मानते हैं। मेघदूत में दिये वर्णन के अनुसार (श्लोक 12) यहां पर एक शिला पर श्रीराम के चरणचिन्ह अब तक बने हुए हैं। यहां प्राचीन भग्नावशेष भी विद्यमान हैं। किन्तु यह उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि मेघदूत में यक्ष रामगिरि से उत्तर आम्रकूट है, ऐसा बताया है जबकि यह ईशान में है। कुछ विद्वान् महाराष्ट्र नागपुर के निकट रामटेक को रामगिरि मानते हैं। यह स्थान भी अत्यन्त प्राचीन है। यहां प्राप्त एक ताम्रपत्र पर "रामगिरिस्वामिनः पादमलात्" ऐसा उल्लेख है। जिससे यह सिद्ध होता है कि यही रामगिरि होना चाहिए। यहां से मेघ द्वारा बताया गया मार्ग भी उचित प्रतीत होता है।

मेघदूत रचना की पृष्ठभूमि में रामायण की वह घटना जिसमें रावण द्वारा हरी गयी सीता को खोजने एवं संबल प्रदान करने के लिए श्रीराम हनुमान को दूत बनाकर भेजते हैं, रही होगी।

इस प्रकार महाकवि कालिदास की यह कालजयी कृति विप्रलम्भ का अनुपम तथा कनिष्ठिकाधिष्ठित मनोरम उदाहरण है।

यूनिट – 5

कुमारसम्भव और रघुवंश महाकाव्य

NOTES

प्रस्तावना –

कुमारसम्भवम्

अब तक प्राप्त हुई कुमार सम्भव की प्रतियों में सत्रह सर्ग है। कुछ लोग मानते हैं कि इसमें 22 सर्ग थे। इसके विषय पर कुछ लोगों का यह भी कहना है कि कालिदास इस काव्य को पूर्ण नहीं कर सके तथा आरम्भ के आठ सर्ग ही वास्तव में कालिदास के रचे हुए हैं। साथ ही सुप्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथकृत संजीवनी टीका भी प्रथम आठ सर्गों पर ही मिलती है। आगे नहीं। इन बातों पर आगे प्रकाश डालेंगे।

एक बार ब्रह्मा के वरदान से उन्मत्त होकर तारकासुर ने देवताओं को बहुत सताया। देवताओं ने ब्रह्मा जी के आदेशानुसार शिव और पार्वती का विवाह करा दिया। फलतः दोनों के संयोग से कार्तिकेय की उत्पत्ति हुई। तारकासुर के वध के लिए उनको सेनापति बनाया गया और उनके हाथों उस उग्र असुर का संहार हुआ, यह कथा इस काव्य में वर्णित है।

इसके प्रथम सर्ग में कवि ने हिमालय का बड़ा सुन्दर एवं मनोहर वर्णन किया है। आगे पार्वती जन्म और शैशव एवं यौवन का बहुत ही सरस वर्णन किया है। एक बार पार्वती को उसके पिता के निकट बैठी देख महर्षि नारद ने भविष्य वाणी की कि यह कन्या शिव की अर्द्धांगिनी होगी। उनकी इस बात पर विश्वास कर हिमालय ने उसके यौवन में पदार्पण करने पर भी उसके विवाह की चिन्ता नहीं की। उस समय भगवान् शंकर हिमालय पर ही तप कर रहे थे। उनकी सेवा करने की आज्ञा पर्वतराज ने अपनी पुत्री को दे दी। (सर्ग-1) इसी समय तारकासुर के त्रास से डरकर देवता लोग ब्रह्मा जी के पास में गये। उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर देवताओं से ब्रह्माजी ने कहा— मैं स्वयं उसे वरदान दे चुका हूँ, इसलिए उसका विनाश करना मेरे लिए असम्भव है। आप लोग यत्न करके शिव-पार्वती का परिणय कराइये। उनसे उत्पन्न हुआ पुत्र तारकासुर को मारकर निर्भय करेगा। (सर्ग-2)

इन्द्र ने अपनी सभा में कामदेव को बुलाया और समाधिस्थ शंकर के हृदय में पार्वती के प्रति आकर्षण पैदा करने का भार उसे सौंपा। मदन अपनी पत्नी रति तथा मित्र वसन्त को लेकर हिमालय पर गया। वहां शिव जी के हृदय में कामवासना का बीज बोने के लिए सर्वप्रथम वसन्त ने सर्वत्र अपना साम्राज्य स्थापित किया। शिवजी जिस स्थान पर ध्यानस्थ बैठे थे, उस लता गृह के द्वार पर नन्दी पहरा दे रहा था। उसकी आंखे बचाकर कामदेव अन्दर चला गया। योगस्थ शिव उस समय परमात्म-दर्शन में लीन थे। कुछ काल के अनन्तर समाधि टूटने पर उनकी अनुमति से नन्दी ने पार्वती को भीतर आने दिया। पार्वती ने उनके चरणों में पुष्पाञ्जलि अर्पण कर गंगा नदी में उत्पन्न हुए कमलों के शुष्क बीजों की माला शिवजी को भेंट करने के लिए आगे बढ़ाई। माला स्वीकार करते समय बहुत अच्छा मौका पाकर कामदेव ने अपने धनुष पर सम्मोहन नामक वाण चढ़ाया। परिणाम यह हुआ कि शिव जी की चित्तवृत्ति क्षण भर के लिए चञ्चल हो उठी। किन्तु उन्होंने तुरन्त उस वृत्ति का दमन कर चित्त को वश में किया और वे उस कारण को दूढ़ने लगे, जिससे उनके मन में विक्षोभ हुआ था। सामने निगाह डाली तो कामदेव को धनुष पर वाण चढ़ाये आगे खड़ा देखा। बस फिर क्या था ? मारे क्रोध के उन्होंने अपना तीसरा नेत्र खोल दिया और उससे जो भयंकर अग्निज्वाला निकली, उसमें कामदेव जलकर भस्म हो गया। (सर्ग-3) अपने पति की यह दुर्दशा देखकर रति एकदम मूर्च्छित हो गयी। जब उसे कुछ होश आया तो वह बहुत विलाप करने लगी। उसे सान्त्वना देने के लिए उसके प्रियतमा का सखा वसन्त वहां आया। उसे देख रति का दुःख दुगुना हो गया। वह पिछली बातों को यादकर फूट-फूट कर रोने लगी। अत्यन्त दुःख के कारण वह देह त्याग करना ही चाहती थी कि इतने में आकाशवाणी हुई—

“शिवजी जिस समय पार्वती का पाणिग्रहण करेंगे उस समय वे मदन (कामदेव) को वे अवश्य प्राणदान देंगे। तब तक तू अपनी देह रक्षा कर। (सर्ग-4) अपने समक्ष ही मदन की दहन देख पार्वती को घोर निराशा हुई तथा वे शिव को प्राप्त करने के लिए कठोर तपश्चर्या करने लगीं। उनकी तपश्चर्या से प्रसन्न होकर शिव ब्रह्मचारी का वेश धारण कर तप से कृश शरीर पार्वती के निकट गये। पार्वती जी ने उस ब्रह्मचारी की पूजा की। ब्रह्मचारी ने उनसे यह प्रश्न किया कि सब प्रकार के अनुकूल सुखसाधनों के होने पर भी इस यौवनकाल में कठोर तपस्या करने का कारण क्या है। परन्तु पार्वती की सखी द्वारा शिवजी को ज्ञात हुआ कि ये उन पर

मोहित हो चुकी हैं और उनको पाने के लिए ही घोर तपस्या कर अपने सुकुमार शरीर को कठिन कष्ट दे रही हैं। इतना समाचार (हाल) जान लेने पर ब्रह्मचारी ने शिव की खूब निन्दा की। उनके सर्पभूषणों का, रक्तबिन्दु टपकने वाले गजचर्म के दुपट्टे का, श्मसान वास का, दरिद्रता का, तथा तीसरे नेत्र के होने से उत्पन्न हुई कुरूपता का निन्दात्मक वर्णन किया और ऐसे कुरूप वर को पाने के लिए इतनी कठिन साधना करने का प्रत्याख्यान किया। ब्रह्मचारी के भाषण को सुनते ही पार्वती का क्रोध भड़क उठा और उन्होंने उनकी बातों का खण्डन कर अपना शिव को प्राप्त करने का अटल निश्चय सूचित किया। ब्रह्मचारी कुछ कहने को ही थे कि पार्वती उठकर जाने लगीं। तब शंकर ने प्रगट होकर उन्हें दर्शन दिया और जाने से रोककर कहा कि मैं तुम्हारी कठिन तपश्चर्या से प्रसन्न होकर आज से तुम्हारा दास हो गया हूँ। (सर्ग-5)

इसके बाद शिवजी ने अरुन्धती सहित सप्तर्षियों को हिमालय के निकट भेजकर पार्वती की सगाई मांगी। हिमालय ने अपनी पत्नी मैना से विचार-विमर्श करके इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकृति दे दी। (सर्ग-6) शुभ मुहूर्त में पार्वती के साथ शिवजी का परिणय हुआ। इस मांगलिक अवसर पर पार्वती की वेशभूषा का, उनकी सखियों द्वारा किए गये परिहास का, विवाह के लिए प्रस्थान करते समय शिवजी के परिवार का, उनके पुर प्रवेश के समय नगर की स्त्रियों की शीघ्रता का, तथा विवाहोत्सव का विस्तृत और अत्यन्त रमणीय वर्णन कवि ने किया है। (सर्ग-7)

विवाह होने के पश्चात् शिव ने पार्वती के साथ विविध भोगविलास में सैकड़ों ऋतुएं बिता दी। (सर्ग-8) तब इन्द्रादि देवताओं ने अग्नि को कबूतर बनाकर शिव पार्वती के विलास-स्थल पर भेजा। पहले तो शिवजी को बड़ा क्रोध आया किन्तु अग्नि ने उन्हें वस्तु स्थिति का पूरा ज्ञान कराया तब वे प्रसन्न हुए और उन्होंने अपना वीर्य उसमें स्थापित किया। अग्नि को यह सहन न हुआ तो उसने इन्द्र के कहने से स्वर्ग की गंगा में उस वीर्य को डाल दिया। (सर्ग-9) गंगा भी उसे धारण न कर सकी तो उसने वहां स्नान करने आई छः कृतिकाओं के शरीर में डाल दिया। इससे उनको गर्भ रह गया। उस गर्भ का भार वे छः कृतिकायें न सहन कर सकीं, इसलिए उन्होंने उसे वेतस वन में छोड़ दिया तथा चली गयीं। (सर्ग-10) उसी समय पार्वती और शिव विमान में बैठे हुए उस मार्ग से जा रहे थे उनकी दृष्टि उस बालक पर पड़ी, वे उसे अपने वीर्य से उत्पन्न समझकर अपने घर उठा लाये। वह केवल छः

दिनों की अवधि में बड़ा होकर सकल शस्त्र एवं शास्त्रों की विद्याओं में पारंगत हो गया। इस प्रकार कार्तिकेय की उत्पत्ति हुई। (सर्ग-11) आगे इन्द्रादि देवताओं द्वारा प्रार्थना करने पर शिवजी ने कार्तिकेय को देवताओं की सेना का नायक बना दिया तथा स्वर्ग भेजा (सर्ग-12) सेनानी स्कन्द (कार्तिकेय) को आगे करके देवताओं ने तारकासुर पर चढ़ाई कर दी। (सर्ग-13) उसने भी लड़ाई की तैयारी की और बुरे शकुन होने पर भी कुमार के साथ उसने युद्ध किया। अत्यन्त लोमहर्षक युद्ध हुआ और अंत में कुमार के बाण से तारकासुर मारा गया। स्वर्ग से देवी-देवता गण प्रसन्न होकर पुष्पवृष्टिका करने लगे। देवता एवं देवाधिपति इन्द्र प्रसन्नचित्त होकर स्वर्ग का निष्कण्टक राज्य करने लगे। (सर्ग 14 से 17)

“कुमार सम्भव” के 17 सर्गों में केवल 8 सर्गों पर ही अरुण गिरिनाथ, मल्लिनाथ आदि की टीकायें उपलब्ध हैं। इस काव्य का कुमारसम्भव नाम होने से कुछ लोगों का यह अनुमान है कि कवि ने कुमार के जन्म तक की घटनाओं का वर्णन किया होगा। किन्तु यह बात युक्तिसंगत नहीं है। कारण कि कुमारगुप्त के जन्मोत्सव पर उक्त काव्य की रचना किए जाने से, सम्भव है कालिदास ने इस काव्य को यह नाम विशेष अभिप्राय से दिया हो। इसके अतिरिक्त इन प्रथम 8 सर्गों में कुमार जन्म तक भी कथानक की प्रगति नहीं हुई है, यह बात ऊपर दिये गये सारांश से स्पष्ट होती है। अतः यह काव्य अधूरा रह गया होगा ऐसा अनुमान कर सकते हैं। सातवें तथा आठवें सर्ग में शिवपार्वती के संयोग का वर्णन बहुत ही उत्तान तथा अमर्यादित हुआ है और उसके सुरुचिपूर्ण न होने से आनन्दवर्धनादि अलंकारशास्त्रियों ने कवि को दोषी ठहराया है। कहते हैं श्रृंगार के नग्न वर्णन से पार्वती ने क्रुद्ध होकर शाप दिया। फलतः यह काव्य अपूर्ण ही रह गया। टीकाकार अरुण-गिरिनाथ ने इस किंवदन्ती का स्पष्ट उल्लेख किया है। इन बातों से स्पष्ट पता चलता है कि कालिदास के समय में ही इस तरह के आक्षेप होने लग गये थे। सम्भवतः इसी से कालिदास ने “कुमार सम्भव” को अपूर्ण ही रहने दिया। इसे अपूर्ण देखकर पश्चाद्वर्ती किसी कवि ने इसे चालाकी एवं कुशलता पूर्वक पूर्ण कर दिया होगा।

उस काव्य में महादेव, पार्वती और कामदेव, इनके विविध चेष्टाओं के वर्णन में कवि ने अपनी सारी शक्ति व्यय कर दी है। महादेव तथा पार्वती एक महान् असाधारण दिव्य दम्पती है। एक त्रैलोक्य का पिता दूसरी जगन्माता। ऐसे अलौकिक विभूतियों के मानसिक विकारों का वर्णन करते समय अनौचित्य का परिहार करना

अत्यावश्यक था। परन्तु यदि केवल अद्भुत रूप में ही कवि वर्णन करता तो संभव है पाठक उन्हें इतने प्रेम से न अपनाते। कवि ने इस मर्यादा को अत्यन्त कुशलता पूर्वक निभाया है। महान् इन्द्रियनिग्रही सदैव तपश्चर्या में संलग्न, चित्त को किञ्चित भी चंचल होते देख उसका कारण ढूँढ़कर कारणभूत कामदेव को प्राणान्तदण्ड देने वाले कठोर हृदय भगवान् शंकर पार्वती की उग्र तपश्चर्या तथा उनके सहज प्रेम से प्रसन्न हो जाते हैं। फिर उनके साथ विवाह की उत्सुकता से प्रतीक्षा करते हैं। उनके साथ विविध विलासयुक्त प्रणयकेलियां करते हैं। सन्ध्यावन्दनादि नित्य साधनानुष्ठान में जब अधिक समय लग जाता है तो पार्वती कष्ट हो जाती हैं। वे उनसे अनुनय-विनय करते हैं। इत्यादि बातों का वर्णन कवि ने अत्यन्त रमणीय रूप में किया है। अपने अनुपम सौन्दर्य का जिन्हें बड़ा अभिमान है। परन्तु मदन का दहन हो जाने पर जिन्हें बड़ी निराशा हुई और फिर महादेव की प्राप्ति के लिए अत्यन्त घोर तपस्या करके जिन्होंने अपने अति सुकुमार शरीर को कठिनतम कष्ट दिये। गुरुजनों के सम्मुख अत्यन्त नम्र, किन्तु दुर्जनों को अपने वाग्वज्र से घायल करने वाली, पति के सन्यावन्दन में अधिक समय लग जाने से सपत्नी समान मत्सरग्रस्त पार्वती का वर्णन कवि ने बड़ी कुशलता से किया है। उसी तरह विश्व में अपना सर्वत्र स्थापित प्रचण्ड साम्राज्य देख अभिमानमूर्ति साक्षात् योगिराज शंकर को भी मोह में डालने की गवोक्ति करने वाला किन्तु हृदय में सशंक होने के कारण नन्दी की आंख बचाकर शंकर के आश्रम में चोर की भांति प्रवेश करने वाला मदन भी बड़ी निपुणता से चित्रित किया गया है।

पहले आठ सर्गों के सभी वर्णन कवि ने बड़ी कुशलता से किये हैं। फिर भी आरम्भ में हिमालय का वर्णन, तीसरे सर्ग में आकस्मिक वसन्त ऋतु के आगमन से वनश्री का वर्णन, चौथे सर्ग में रति विलाप, पंचम सर्ग में वटु वेशधारी शिव तथा तपस्विनी पार्वती का संवाद ये विषय बहुत ही उत्कृष्ट प्रसादपूर्ण शैली से अंकित किए गये हैं। इस काव्य में श्रृंगार के सम्भोग और विप्रलम्भ इन दोनों भेदों की तथा करुण रस की प्रधानता है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

आमेखलं संचरतां घनानां छायामद्य सानुगतां निषेव्य ।

उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते श्रृंगाणि यत्मातपवन्ति सिद्धाः ।।

(कुमार0 1, 5)

हिमालय पर निवास करने वाले सिद्ध पुरुष पर्वत के मध्य भाग के चारों ओर घूमने वाले मेघों की, नीचे शिखर पर पड़ने वाली, छाया का सेवन करके जब वे वृष्टि से ऊब जाते हैं, तब ऊंचे-ऊंचे शिखरों पर जाकर सूर्यप्रकाश का आनन्द लेते हैं।

कुवेरगुप्तां दिशमुष्णरश्मौ गन्तुं प्रवृत्ते समयं विलङ्घ्य।

दिग्दक्षिणा गन्धवहं मुखेन व्यलीक निःश्वास मिवोत्ससर्ज ॥

(कुमार0 3, 25)

जैसे वचन तोड़कर प्रियतम के चले जाने पर पत्नी विरह व्यथा से सांसे छोड़ती है। उसी तरह सूर्य ने असमय में ही उत्तर दिशा का आश्रय लिया और तब मलयानिल के रूप में दक्षिण दिशा ने दुःखनिःश्वास छोड़े।

मदन दहन के पश्चात् रति का विलाप पढ़कर विरल ही सहृदय पाठक होंगे जिनके आंसू न उमड़ पड़े। स्वयं अपनी आंखों के सामने पति को भस्म हुआ देख रति को पहले मूर्च्छा आती है। कुछ देर पीछे होश आने पर वह जमीन पर पड़ी हुई विलाप करती है। उसकी केशाबली विखर गयी है और उसका विलाप सुनकर सारा वन रो उठता है। उदाहरणार्थ देखें —

हृदये वससीति मत्प्रियं यदवोचस्तदवैमि कैतवम्।

उपचार पदं न चेदिदं त्वमनङ्गः कथमक्षता रतिः ॥

(कुमार0 4-6)

तुम तो कहा करते थे कि तू मेरे हृदय में सदा रहती है परन्तु अब मुझे मालुम हुआ कि ये सब बनावटी बातें थी। यह मुझे खुश करने के लिए कहा करते थे। नहीं तो तुम्हारे नष्ट हो जाने पर मैं कैसे अक्षत बनी रहती। इस श्लोक में शब्द बहुत सरल हैं। भाषा अनलंकारिक है पुनरपि मार्मिकता एवं करुणा उल्लेखनीय है। पंचम सर्ग में ब्रह्मचारी का छलपूर्ण भाषण और उस पर पार्वती का दिया हुआ मुंहतोड़ उत्तर भी बेजोड़ है। शंकर के अकिंचनत्व और उनके श्मसान निवास आदि के दोष जिस समय ब्रह्मचारी ने पार्वती को सुनाये उस समय पार्वती ने निम्नलिखित उत्तर दिया—

अकिंचनः सन् प्रभवः स सम्पदां त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः

स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः ॥

(कुमार0 5-77)

NOTES

स्वयं धनहीन होकर भी वे दूसरों को सम्पदा देते हैं। श्मशान में रहकर भी तीनों लोकों के स्वामी है, भयंकर रूप होने पर भी लोग उन्हें शिव कहते हैं। सच बात तो यह है कि उनके सम्बन्ध का सच्चा ज्ञान किसी को नहीं है। भगवान् शंकर का जातपांत और जन्म किसी को मालूम नहीं हैं ब्रह्मचारी के इस आक्षेप का उत्तर पार्वती ने इस प्रकार दिया—

विवक्षता दोषमपि च्छुतात्मना त्वयैकमीशं प्रति साधु भाषितम् ।

यमामनन्त्यात्मभवोऽपि कारणं कथं स लक्ष्यप्रभवो भविष्यति ॥

(कुमार0 5-81)

निर्दोष शंकर में तू जो दोष ही दोष दिखाने की चेष्टा कर रहा है, सो इस अनधिकार चेष्टा में भी तेरे मुख से एक बात तो सच निकल ही गई। तूने जो यह कह दिया कि शिव के जन्म का कोई ठिकाना नहीं, सो बहुत ठीक है। ब्रह्मा तक की उत्पत्ति जिनसे हुई है, उन अनादि शिव के जन्म का पता किसी को कैसे लग सकता है ? इत्यादि ।

कालिदास ने कुमारसम्भव का कथानक किस ग्रन्थ से लिया इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। शिवपुराण तथा स्कन्दपुराण में कार्तिकेय की कथा का वर्णन है। उस वर्णन से कालिदास के कुमारसम्भव का वर्णन बहुत कुछ मिलता जुलता है।

उदाहरणार्थ—

शिवपुराण— द्वयोरपि भवान् श्रेष्ठः सर्वगः सर्वशक्तिमान् ।

वज्रं च निष्फलं स्याद्वै त्वं तु नैव कदाचन ॥

दोनों में आप श्रेष्ठ हैं। सर्वगति और सर्वशक्तिमान् हैं, वज्र चाहे निष्फल हो जाय किन्तु आप कभी असफल नहीं होते ।

कुमारसम्भव— वज्रं तमो वीर्यमहत्सु कुण्ठं त्वं सर्वतोगामि च साधकं च

(कुमार0 3-12)

तपश्चर्या से शक्तिशाली व्यक्तियों पर वज्र का प्रभाव कुण्ठित हो जाता है। किन्तु तुम सर्वत्रगति और कार्यसाधक हो ।

2. शिवपुराण : अन्येषां गणनरा नास्ति पातयामि हरं यदि ।

कुमारसम्भव : कुर्या हरस्यापि पिनाकपाणेर्धैर्यच्युतिं के ममधन्विनोऽन्ये ।

(कुमार0 3-10)

NOTES

‘पिनाक धनुषधारी शंकर को भी धैर्य से डिगा सकता हूं, अन्य धनुषधारियों की तो गणना ही क्या ?’

इस विलक्षण अर्थ साम्य के कारण कालिदास ने शैव और स्कन्दपुराण से अपनी कथा ली है, ऐसा कई लोग कहते हैं, पर हमारी समझ में यह युक्ति संगत नहीं। इस समय जो अठारह पुराण उपलब्ध हैं, उनका बहुत सा अंश व्यास के अतिरिक्त भी कवियों द्वारा जोड़ दिया गया प्रतीत होता है। अर्थात् पुराणों का बहुत सा अंश बहुत पीछे बना हुआ है। तब वे पुराण कालिदास के समय में मौजूद थे, इसका कोई पर्याप्त प्रमाण नहीं मिलता। उलटे कुमार सम्भव में विविण प्रसंगों का जो उत्कृष्ट गुम्फन हुआ है वह कालिदास का अपना है। यह बात उनके और दूसरे ग्रन्थों से स्पष्ट होती है। विवाह के अनन्तर भगवान् शंकर अंग देश में तपश्चर्या कर रहे थे। वहां मदन ने पहुंचकर तपोरत शिव को प्रेमलीला में फंसाने की चेष्टा की, उस समय शंकर ने क्रुद्ध होकर उसे अनंग कर दिया यह कथा रामायण के बालकाण्ड में 23वें सर्ग में आई है। यह कथा कालिदास को अवश्य ज्ञात रही होगी। कला की दृष्टि से कवि ने उसमें परिवर्तन करना आवश्यक समझा। अतः पार्वती के विवाह के पूर्व हिमालय पर मदन का दहन कालिदास ने कराया है। बाह्य रूप ही अवलंबित रहने वाला प्रेम स्थाई नहीं होता किन्तु जो अनेक संकटों और आपत्तियों में भी अविचल रहता है, वही प्रेम सत्य है। इस मत का समर्थन कवि ने इस प्रसंग पर किया है। इससे यह प्रतीत होता है कि कुमार सम्भव के आरम्भिक आठ सर्गों का वर्णन कालिदास का मौलिक कथानक है, जिसकी अनुकृति शिव तथा स्कन्द पुराण में है। यह डॉ. विंटरनिट् का मत है और वह विश्वसनीय भी है।

रघुवंशमहाकाव्यम्

यह काव्य कालिदास के काव्यों में सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। इसमें कवि की परिपक्व प्रतिभा का परिचय मिलता है। उपलब्ध प्रतियों में इस काव्य के 19 सर्ग

मिलते हैं। इन सर्गों में कुल 29 राजाओं का वर्णन है। इन राजाओं में रघु नामक राजा बहुत बड़ा प्रतापी तथा दानशील हुआ था। उसके वंशधर राजाओं का इस काव्य में वर्णन किया गया है। इसीलिए कवि ने इसका नाम रघुवंश रखा।

NOTES

कथानक का प्रारंभ पार्वती परमेश्वर की वंदना से होता है। शब्द और अर्थ का सम्यग् ज्ञान होने के लिए उसके ही समान् नित्य परस्पर संबद्ध पार्वती परमेश्वर की वन्दना करके कवि ने बहुत नम्रता पूर्वक अपने विषय का महत्व और उसके सामने अपना मन्दमतित्व प्रकट किया है। कवि स्वयं कहता है— जिस प्रकार ऊंचे वृक्ष के फल तोड़ने के लिए किसी बौने मनुष्य का ऊपर को हाथ फैलाना उपहासास्पद होता है। उसी प्रकार मुझ मन्दमति का काव्य प्रणवन रूप प्रयास भी उपहास के लायक है। मैं हूँ तो मन्दबुद्धि, पर कवियों को प्राप्त होने वाली कीर्ति का अभिलाषी हूँ। जिस मणि में पहले से ही छिद्र कर दिया गया हो उसमें डोरा पिरोने में कुछ भी कठिनाई नहीं होती, उसी प्रकार पूर्व कवि वर्णित इस वंश में मेरा प्रवेश होगा। इसके अनन्तर रघुकुलोत्पन्न राजाओं की महत्ता संक्षेप में वर्णन कर कवि ने सहृदय समीक्षकों से अपने काव्य की, सुवर्ण की तरह, परीक्षा करने का अनुरोध किया है।

पहले सर्ग में मनु वंश में उत्पन्न दिलीप राजा का चरित्र वर्णित है। यह दिलीप बड़े प्रतापी, धर्मात्मा और समस्त श्लाघनीय गुणों से सम्पन्न थे। उनका राज्य आसमुद्र पृथ्वी तक फैला हुआ था। उन्हें दुःख तो केवल पुत्र न होने का था, अतः अपने राज्य का भार सुयोग्य मन्त्रियों पर छोड़कर शीलरूपवती उदारचरिता, राजमहिषी सुलक्षणा को साथ लेकर दिलीप कुलगुरु वशिष्ठ के आश्रम में पहुंचे। राजा ने निःसंतान होने का दुःख वशिष्ठ जी से निवेदन किया। ऋषि ने ध्यानस्थ होकर सन्तान हीन होने का कारण बताया— राजन् ! एक बार तुम स्वर्ग में इन्द्र से भेंटकर वहां से पृथ्वीलोक लौट रहे थे। तब कल्पवृक्ष के नीचे खड़ी हुई कामधेनु की परिक्रमा न करके तुमने उसका अपमान किया। इससे कुपित होकर उसने तुमको यह अभिशाप दिया कि मेरी पुत्री नन्दिनी की सेवा किए बिना पुत्रलाभ न होगा। उस कामधेनु की पुत्री नन्दिनी मेरे आश्रम में विद्यमान है। अनन्यचित होकर अक्तिभाव से तुम उसकी सेवा करो। वह प्रसन्न होकर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेगी। कुलगुरु वशिष्ठ जी के आदेशानुसार राजा दिलीप ने कामधेनु की कन्या नन्दिनी गाय की सेवा करने का निश्चय किया (सर्ग—1) दूसरे दिन से ही राजा ने अपने अनुचरों को विदा

कर दिया और स्वयं दत्तचित्त होकर उसकी सेवा में लग गया। इस प्रकार तीन सप्ताह बीत गये। एक दिन नन्दिनी के मन में आया कि राजा के सत्य की परीक्षा लेनी चाहिये। वह चरती हुई हिमालय की गुफा में घुस गयी। राजा हिमालय की प्राकृतिक शोभा देखने में अपने को भूल गया। इतने में एक सिंह उस गाय पर टूट पड़ा। गाय रक्षा के लिए चीख पड़ी। यह देखकर दिलीप उसकी रक्षा के लिए कटिबद्ध हो गया। ज्यों ही क्रुद्ध होकर उसने सिंह को मारने के लिए तरकस से बाण निकालना चाहा उसका हाथ अकड़कर वहीं चिपक गया। यह देखकर सिंह राजा से मनुष्य की वाणी में बोला— राजन् मेरा नाम कुम्भोदर है। मैं निकुम्भ का मित्र और शंकर जी का सेवक हूँ। सामने इस देवदास के वृक्ष को देखते हो ना। इसे पार्वती ने अपने हाथ से सींचकर पाला—पोसा है। एक दिन एक जंगली हाथी ने अपने गण्डस्थल को खुजलाकर इस देवदास की त्वचा को छील डाला। इससे पार्वती को परम दुःख हुआ। अतः श्री शंकर जी ने मुझे सिंह का रूप देकर यह आज्ञा दी है कि इस गुहा के पास आने वाले प्राणियों को मारकर तू अपनी जीविका चला। मैंने कल उपवास किया था और यह गाय पारणा रूप में मुझे आज प्राप्त हुई है। अब तेरा कोई वश चलने का नहीं तू लौट जा। राजा ने उत्तर दिया— भगवान् शंकर जी स्थावर और जंगम सृष्टि के उत्पादक, पोषक तथा संहारक है। अतः उनकी आज्ञा मुझे परम मान्य है, किन्तु अपने गुरु के गोधन का सामने नष्ट होने देना भी उचित नहीं है, इसलिए मैं तुझे स्वदेह अर्पण करता हूँ। इसे तू स्वीकार कर और गाय को छोड़ दे। एक गाय के लिए संसार का साम्राज्य, तथा अपने तारुण्यपूर्ण सुन्दर शरीर का त्याग करना मूर्खता का चिन्ह है। इत्यादि कहकर सिंह ने राजा को अपने निश्चय से डिगाने का प्रयत्न किया किन्तु राजा ने एक न सुनी। इससे सिंह को राजा का कहना मानना पड़ा। राजा का हाथ खुल गया और वह सिंह के सामने गर्दन झुकाकर बैठ गया। “मेरे ऊपर सिंह झपटने वाला ही है” ऐसा सोच ही रहा था कि आकाश से राजा के ऊपर पुष्प वृष्टि होने लगी। उस सिंह को नन्दिनी ने राजा की परीक्षा के लिए माया से उत्पन्न किया था। राजा की इस प्रगाढ़ गुरुभक्ति से नन्दिनी सन्तुष्ट हुई और पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद देती हुए राजा से अपना दूध पीने के लिए बोली। आश्रम को लौटकर राजा ने यह सब वृत्तान्त गुरु वशिष्ठ और रानी सुरक्षिणा को सुनाया। हवन और बछड़े के पीने से बचे हुए दूध को राजा और रानी ने गुरु की

आज्ञा से पिया। दूसरे दिन व्रत का उद्यापन करके वे दोनों राजधानी को लौट आये।
(सर्ग-2)

NOTES

रानी शीघ्र ही गर्भवती हुई और यथासमय जब पांचोग्रह उच्च स्थान में थे ऐसे शुभ मुहूर्त में उसको पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा ने उसका नाम रघु रखा। सकल शास्त्र विद्या और शस्त्र विद्या में प्रवीण देखकर राजा ने उसे युवराज बनाया और अश्वमेघ याग आरम्भ किया। इस प्रकार निन्यानवे अश्वमेघ यज्ञ निर्विघ्नता पूर्वक समाप्त हुए। सौवें अश्वमेघ के समय इन्द्र अदृश्य रूप से आकर अश्व को चुरा ले गया। किन्तु नन्दिनी की कृपा से रघु को इन्द्र का यह कपट मालूम हो गया। उसने इन्द्र को लड़ने के लिए आह्वान किया। दोनों का भयंकर युद्ध हुआ। रघु की वीरता से सन्तुष्ट होकर इन्द्र ने कहा— 'अश्व को छोड़कर तू दूसरा वर मांग' तब रघु ने यह इच्छा प्रकट की कि अश्व के बिना भी नियमपूर्वक समाप्त किसे गये यज्ञ का पुण्य मेरे पिता को मिले। इन्द्र द्वारा इस बात को स्वीकार कर लेने पर रघु पिता के पास लौट आया। यज्ञ के समाप्त होने पर राजा दिलीप ने रघु को राजगद्दी पर बैठाया और स्वयं सुरक्षिणा के साथ तपोवन को चला गया। (सर्ग-3) रघु ने ऐसा सुन्दर राज्य शासन किया कि लोग दिलीप को भूल गये। प्रजारंजन करने के कारण रघु की 'राजा' यह पदवी अन्वर्थ हुई। शरद ऋतु के आने पर पड़नि सेना साथ लेकर वह दिग्विजय के लिए निकला। पहले उसने पूर्व दिशा में सुहभ, वंग, इत्यादि देश जीतकर गंगा के प्रवाह में अपना विजय स्तम्भ गाड़ा। फिर वह दक्षिण की ओर चला। कलिंग देश के राजा का पराजय कर उसे कर लेकर छोड़ दिया किन्तु उसके राज्य को आत्मसात् नहीं किया। बाद में पूर्व किनारे से चलकर उसने कावेरी नदी पार की ओर पाण्ड्य राजा को पराजित किया तथा उससे ताम्रपर्णी नदी के मुहाने पर मिलने वाले मोतियों का कर लिया। दक्षिण दिशा में मलय और दर्दुर पर्वत पर चढ़ाई की और सहयपर्वत लांघकर केरल तथा अपरान्त (कांकण) देश के राजाओं को हराया। फिर पारसीक देश को जीतने के लिए वह स्थल मार्ग से आगे बढ़ा। वहां के घोर युद्ध में उसने अपने बाणों से यवनों की लंबी दाढ़ी वाले सिर काट-काट कर जमीन पाट दी। उत्तर दिशा के दिग्विजय में हूण, काम्बोज इत्यादि राजाओं का पराभव कर और उनसे कर भार लेकर वह हिमालय की ओर चला। वहां उत्सव संकेतादि गणराज्यों से युद्ध होने पर उन्होंने राजा रघु के स्वामित्व को स्वीकार किया और भेंट दी। फिर कामरूप (आसाम) के राजा ने रत्नरूपी वुष्पों से उसका सत्कार किया। इस

प्रकार भारत वर्ष के चारों दिशा से राजाओं को जीतकर पाई हुई सम्पत्ति यज्ञ में दान कर दी। (सर्ग-4)

यज्ञ पूर्ण होने पर राजा का खजाना सर्वस्व त्याग से रिक्त हो गया। इसी समय परतन्तु का शिष्य कौत्स ब्रह्मचारी गुरुदक्षिणा के लिए चौदह करोड़ स्वर्ण मुद्रायें मांगने आया। ऐसे विद्वान् ब्राह्मण को खाली हाथ वापस भेजने से रघु की अपकीर्ति होती। राजा को और कहीं से धन की आशा नहीं थी। अन्य राजागण पहले ही राजा को अपेक्षित धन दे चुके थे। इसलिए उसने धनपति कुवेर पर चढ़ाई करने का निश्चय किया। यह जानकर कुवेर ने पहले ही राजा को प्रसन्न करने के लिए स्वर्ण मुद्राओं की वर्षा कर दी। रघु ने सम्पूर्ण स्वर्ण मुद्रायें कौत्स को देना चाहा परन्तु उस कौत्सने चौदह करोड़ स्वर्ण मुद्राओं से एक मुद्रा भी अधिक लेने से मना कर दिया। कौत्स ब्रह्मचारी के आशीर्वाद से रघु को पुत्र की प्राप्ति हुई। रघु का पुत्र अज भी पितृतुल्य गुणों से अलंकृत और प्रतापी राजा हुआ। (सर्ग-5) अज ने युवावस्था में पदार्पण किया। उस समय विदर्भराज ने अपनी बहन इन्दुमती का स्वयम्बर रचा। अज भी आमन्त्रण पाकर स्वयम्बर में सम्मिलित होने के लिए चला। मार्ग में नर्मदा नदी के तट पर उसे एक मदमत्त हाथी का सामना करना पड़ा। वह पूर्व जन्म में प्रियवद नामक गन्धर्व था। किसी अपराध वश मतंग ऋषि के शाप से उसे हस्तयोनि मिली थी। अज के वाण से वह हस्तियोनि से मुक्त हुआ। उस उपकार के बदले में गन्धर्व ने प्रसन्न होकर अज को सम्मोहन नामक अपना अस्त्र दिया। विदर्भ देश की राजधानी कुण्डिनपुर में अज का बड़ी धूमधाम से स्वागत हुआ। वहां वह अपने शिविर में ठहरा। इन्दुमती की चाह में अज को बहुत देर में नीद आई। प्रातःकाल के समय अज को जगाने के लिए वैतालिकों ने बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। यह वर्णन बहुत ही हृदय हारी है—

ताम्रोदरेषु पतितं तरुपल्लवेषु

निर्धौतहारगुलिकाविशदं हिमाम्भः ।

आभाति लब्धपर भागतयाधरोष्ठे

लीलास्मितं सदशनार्चिखित्वदीयम्द ॥ (रघु0 5-74)

आपके अरुणिमामय अधरों से दन्तों की धवल कान्ति की मिलाप होने पर और भी अधिक सुन्दरता को प्राप्त करने वाले आपके मन्द मधुर स्थित के समान ये वृक्षों

के लाल—कोमल हार के गोल—गोल मोतियों के समान स्वच्छ हिमकण, इस समय बहुत ही शोभायमान हो रहे हैं।

भवति विरल भक्तिर्म्लानपुष्पोपहारः

स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्याः प्रदीपाः ।

अयमपि च गिरं नस्त्वत्प्रबोधप्रयुक्ता

मनुवदति शुकस्ते मंजुवाक्पंजरस्थः ॥ (रघु0 5—74)

पुष्पमाला की बनावट रात में कुम्हला जाने से विरत हो गयी है। आपके शयनागाट के दीपक भी किरण मण्डल के न रहने से निस्तेज हो रहे हैं। आपको जगाने के लिए हम बन्दीजन जो विरूदावली गान कर रहे हैं उसी का अनुकरण यह पिंजड़े में बैठा हुआ मधुरभाषी शुक कर रहा है।

इसके बाद अज शय्या से उठकर नित्य नैमित्तिक कार्य समाप्त कर स्वयम्बर सभा में गया। वहां अनेक राजा महाराजा उपस्थित थे। थोड़ी देर के बाद बन्दीजन राजाओं का गुणगान करने लगे। मयूरों को नाचने के लिए उत्साहित करने वाली शंखध्वनि के होते ही राजकुमारी इन्दुमती पालकी में बैठकर अपनी सखियों के साथ वहां उपस्थित हुईं। अनुपम सुन्दरी इन्दुमती को देखते ही राजागण विविध प्रकार की श्रंगार चेष्टायें करने लगे। यह वर्णन कालिदास ने रसीली भाषा में किया है। इन्दुमती को उसकी सखी सुनन्दा हर एक राजा के समीप ले जाकर उस गुण वर्णन करती है। उक्त अवसर पर भिन्न—भिन्न देशों के नरपतियों के व्यक्तित्व, उत्तम गुण, सम्पत्ति और बल पराक्रम का तथा पूर्वजों की कीर्ति, उनके राज्यान्तर्गत प्राकृतिक सौन्दर्य, सम्पन्न स्थल आदि का वर्णन बहुत ही रमणीय और भौगोलिक दृष्टि से निर्दोष हुआ है। यह स्थल सहृदयों को अवश्य पढ़ना चाहिये। उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है—

अनेन पर्यासयताश्रुबिन्दून् मुक्ताफलस्थूलतमान् स्तनेषु ।

प्रत्यर्पिताः शत्रुविलासिनीनामुन्मुच्य सूत्रेण विनैव हाराः ॥

(रघु0 6—28)

इसने अपने शत्रुओं का संहार करके उनकी स्त्रियों को खूब रूलाया है। इसने उनके वक्षः स्थलों पर बड़े—बड़े मोतियों के समान उनके आंसू क्या गिरवाये मानों

पहले तो उनके मुक्ताहार इसने छीन लिए फिर उन्हें सूत्ररहित करके उन्हीं को लौटा दिया।

इन्दुमती जब पाण्ड्य राज के समीप गई तो उसका परिचय सुनन्दा ने इस प्रकार दिया –

पाण्ड्योऽयमंसार्षित लम्बहारः क्लृप्तांगरागो हरिचन्दनेन।

आभाति बालतपरक्तसानुः सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः॥

(रघु0 6-60)

इस श्लोक में द्राविड़, स्थूल शरीर, कृष्णवर्ण, रक्तचन्दन, चर्चित कलेवर, जिसके कण्ठ में मोतियों का लम्बा हार शोभित हो रहा है। ऐसे पाण्ड्य राजा को बाल सूर्य की किरणों से रक्तवर्ण जैसे विशाल पर्वत की उपमा दी है। जिसके तट की ओर से जल निर्झर बह रहा है। अंग, बंग, कलिंग, मगध, अवन्ती, अनूप, शूरसेन, इत्यादि देशों के राजाओं का सुनन्दा ने बहुत सुन्दर वर्णन किया। तथापि उनमें से एक भी राजा इन्दुमती को पसंद नहीं आया।

अन्त में इन्दुमती सुनन्दा के साथ अज के निकट पहुंची। उस सर्वांग सुन्दर नौजवान अज कुमार को देखते ही इन्दुमती उस पर मोहित हो गयी। यह देखकर सुचतुरा सुनन्दा ने उस राजकुमार का सविस्तार वर्णन किया तथा कुल, कान्ति यौवन, विनय आदि गुणों में यही राजकुमार तुम्हारे सर्वथा योग्य है। इसी के गले में पुष्पमाला डालकर रत्नकांचन सम्बन्ध होने दो, ऐसी सलाह दी। जब देखा कि राजकुमारी के हृदय में अज का अनुराग दृढ़ हो गया है, तब परिहास कुशल सुनन्दा ने इन्दुमती की मीठी चुटकी ली और वहां से अन्यत्र चलने के लिए कहा। किन्तु इन्दुमती तो अपना हृदय अज को दे चुकी थी। सुनन्दा का कहना उसे पसंद नहीं आया। वह क्रोध से उसकी ओर देखने लगी। अज इन्दुमती के अनुरूप सम्बन्ध से पुरवासियों को अपार आनन्द हुआ। अज इन्दुमती को लेकर विदर्भराज ने अपनी राजधानी में प्रवेश किया। उस समय पुरवासी स्त्रियों के जमाव का चित्र कालिदास ने बड़ी बखूबी से खींचा है। इसके पश्चात् विवाह की धूमधाम, इन्दुमती को लेकर अज का लौटना, मार्ग में प्रतिस्पर्धी राजाओं का अज के ऊपर आक्रमण और गन्धर्व दत्त सम्मोहनास्त्र द्वारा उनका पराभव, ततः इन्दुमती सहित अयोध्या लोटने का वर्णन है। (सर्ग 7) रघु ने अपने सुयोग्य पुत्र अज को अयोध्या का सिंहासन देकर तपश्चरण के

लिए वन जाने की तैयारी की। किन्तु अज को अपने पिता का दुःख असह्य जान पड़ा। तब उसके अत्यन्त आग्रह से वह नगर के निकट ही रहने लगा। अज के पास ही कई वर्ष बिताकर अन्त में रघु ने योगाभ्यास द्वारा सामुज्य मुक्ति प्राप्त की। कुछ समय पश्चात् अज को दशरथ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। एक दिन अज अपनी प्रेयसी इन्दुमती के साथ उपवन विहार कर रहा था कि आकाशमार्ग से नारद जी वीणा बजाते हुए एक दिव्य पुष्पमाला हवा के झोंके से हटकर इन्दुमती के हृदय में आ गिरी। उसके आघात से इन्दुमती का प्राणान्त हो गया। इससे राजा को असह्य दुःख हुआ। वह इन्दुमती के शील और विविध गुणों की याद कर शोक करने लगा।

स्रगियं जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम्।

विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं ना विषमीश्वरेच्छया।।

(रघु0 8-46)

इस माला में यदि प्राण हरण करने की शक्ति है तो यह मेरे प्राण क्यों नहीं लेती ? मैं भी तो इसे अपनी छाती पर रखे हूँ। असली बात तो यह है कि परमात्मा की इच्छा से ही विष अमृत होता है और अमृत विष।

गृहणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।

करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हतम्।।

(रघु0 8-67)

तू मेरे घर की स्वामिनी, सच्ची सलाहकार, एकान्त सखी और संगीत आदि ललितकलाओं में मेरी प्रिय शिष्या थी। निर्दयी काल ने तुझे छीनकर मेरा सब कुछ लूट लिया, कुछ भी बाकी न छोड़ा।

राजा का शोक किसी प्रकार कम न होते देख कुलगुरु वशिष्ठ ने अपने शिष्य के द्वारा संदेश भेजा कि जन्म लेने वाली सभी प्राणियों की मृत्यु एक न एक दिन अवश्य निश्चित है। अगर तू शोक से देह त्याग करेगा तो भी इन्दुमती तुझे नहीं मिल सकती। किन्तु इससे राजा के चित्त का समाधान न हुआ। दशरथ के कम उम्र होने के कारण येनकेन प्रकारेण आठ वर्ष व्यतीत किए तथा दशरथ के राजकाल संभालने लायक हो जाने पर उसे राजसत्ता सौंपकर गंगा और सरयू के पवित्र संगम पर उसने प्रायोपवेशन करके देहत्याग कर दिया। (सर्ग-8)

दशरथ ने राज्य सिंहासनारूढ़ होकर न्याय से प्रजा का शासन किया। इसके राज्य में न्याधियां नामशेष थीं। फिर शत्रुओं की कौन कहे। उसे धूत सुरा और परस्त्री इनमें से किसी एक का भी व्यसन नहीं था। उस सदाचारी राजा के राज्य में प्रजा अत्यन्त सुखी थी। उसकी कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा नामक तीन रानियां थीं। अब तक राजा को एक भी सन्तान न थी। बसन्त ऋतु में एक दिन राजा मन्त्रियों की राय लेकर वन में आखेट के लिए गया। यह वर्णन बहुत ही सुन्दर और विस्तार के साथ किया है। इस आखेट का अन्त विषादमय होता है। एक दिन मृगयासक्त राजा को वन में रात हो गयी। इसलिए वह चहीं ठहर गया। विधि का विचित्र विधान। इतने में अन्धे और बूढ़े माता-पिता को पानी पिलाने के लिए उनका इकलौता तरुण पुत्र घड़ा लेकर तमसा नदी के किनारे पानी भरने आया। पास ही में दशरथ खड़े थे। तापस कुमार ने पानी में घड़ा डुबोया उससे जो आवाज हुई उसे हाथी का शब्द समझकर भूल से राजा ने शब्दभेदी वाण मार दिया। तीर मर्मस्थल को भेदकर आर-पार हो गया। ऋषि कुमार ने तत्काल प्राणत्याग दिये। इस हृदयविदारक घटना का पानी की आशा में बैठे हुए उनके अन्धे माता-पिता को जब पता लगा तो उन्होंने शोकार्त होकर राजा दशरथ को अभिशाप दिया, तुम भी हमारी ही भांति बृद्धावस्था में पुत्रशोक से मरोगे।

दिष्टान्त मारस्यति भवानपि पुत्रशोकादव्ये वयस्य हमिवेति। ऐसा शाप देकर उन दोनों ने स्वयं प्राणत्याग कर दिया। इसके आगे छः सर्गों में रामचरित वर्णित है। दशरथ जी ने बहुत काल पर्यन्त राज्य किया। किन्तु पुत्र न होने से ऋष्यभंग आदि ऋषियों के द्वारा उसने पुत्रकामेष्टि नामक यज्ञ आरंभ किया। उसी समय लंकाधिपति रावण से आतंकित देवतागण भगवान् विष्णु के पास शरणापन्न हुए। उन्होंने देवताओं को अभयदान देकर आश्वासन दिया कि मैं शीघ्र ही रावण का वध करने के लिय अवतार धारण करूंगा। इसके बाद यज्ञ का पायस भक्षण करने से कौसल्या से राम, सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न तथा कैकेयी से भरत नामक पुत्र हुए। कुमारावस्था में ही विश्वामित्र ऋषि रामलक्ष्मण को यज्ञरक्षार्थ ले गये। मार्ग में ताड़का नामक राक्षसी का राम ने वध किया। यज्ञ समाप्त होने पर दोनों विश्वामित्र के साथ मिथिला गये। वहां राम ने भगवान् शंकर का धनुष तोड़ा। अन्त में राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, रूपशीलवती राजकन्याओं से विवाह हुआ। अयोध्या को लौटते समय राम ने परशुराम का पराभव किया। (सर्ग-11)

कैकेयी के वर मांगने पर राम, लक्ष्मण और सीता वन को गये। पंचवटी में रहते समय राम ने खरादि दैत्यों का नाश किया। इसके बाद रावन ने सीता का हरण किया। आगे किष्किन्धा के राजा सुग्रीव से मैत्री जोड़कर उसकी सहायता से समुद्र पर सेतु बांधकर राम ने वानरों की सेना के साथ लंका पर चढ़ाई की और रावण को मार डाला। सीता की अग्नि शुद्धि के पश्चात् विभीषण, सुग्रीव, लक्ष्मण तथा सीता के साथ राम पुष्पक विमान द्वारा आकाशमार्ग से अयोध्या लौटे। (सर्ग-12) इस समय जिन स्थानों में राम, लक्ष्मण और सीता वनवासकाल में ठहरे थे, उन स्थानों का वर्णन कवि ने तेरहवें सर्ग में किया है। चौदहवें सर्ग में राम का अयोध्या में प्रवेश, साध्वी सीता के चरित्र पर जनापवाद, राम की आज्ञा से लक्ष्मण द्वारा गर्भभरालसा सीता का वाल्मीकि आश्रम में त्याग आदि का वर्णन है। उस समय लक्ष्मण के द्वारा सीता ने राम के लिए एक संदेश भेजा। सीता के इस संदेश में कालिदास ने सीता के कोमल स्वभाव, करुणावस्था और पतिव्रता धर्म पालन का वर्णन बड़ी ही मार्मिक शैली में किया है। यथा—

साहं तपः सूर्यनिविष्ट दृष्टिकर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये।

भूयो यथा में जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः ॥

(रघु0 14, 66)

मैं प्रसव के उपरान्त सूर्य की ओर दृष्टि लगाकर तप करने की चेष्टा करूंगी। जिससे दूसरे जन्म में आप ही मेरे पति हों और वियोग न हो।

इस प्रसंग पर कविकण्ठ निवासिनी भारती ने सीता देवी की महानुभावता और स्वार्थत्याग का जो वर्णन किया है, वह अत्यन्त करुण, उत्तेजक, मार्मिक और पवित्र है। गर्भिणी दशा में बिना कारण ही अपने को परित्यक्त करने वाले पति के प्रति ऐसे उद्गार एक आर्य स्त्री के मुख से ही निकल सकते हैं।

पन्द्रहवें सर्ग में शम्बूक वध, कुश लव का राम सभा में उपस्थित होकर रामचरित गायन, सीता का भूगर्भ में समा जाना तथा राम आदि का स्वधाम प्रस्थान करना इत्यादि बातें बहुत ही अच्छे ढंग से वर्णित की गयी हैं।

परमधाम को सिधारने से पहले राम ने बंटवारा कर अपने और भाइयों के पुत्रों को राज्य देने की व्यवस्था की। इस व्यवस्थानुसार कुश को दक्षिण का आधिपत्य

मिला। जिसकी राजधानी कुशावती थी। राम के पश्चात् अयोध्या की हालात बुरी हो गई। एक दिन कुश अपने मन्दिर में सो रहा था कि उसे एक अत्यन्त तेजोमूर्ति स्त्री दिखाई दी। वह अयोध्या की अधिदेवता थी। उसने श्रीरामचन्द्र जी के समय की अपनी समृद्धि और राम के बाद उसकी जो दुर्दशा हुई उसका अत्यन्त हृदय स्पर्शी वर्णन करके कुश को अयोध्या में जाकर रहने के लिए आग्रह किया। कुश कुशावती छोड़कर राजपरिवार सहित अयोध्या को लौट आया। एक दिन सरयू में जल विहार करते समय कुश के हाथ का दिव्य कंकड़ जो अगस्त्य ऋषि ने राम को, तथा राम ने कुश को दिया था। सरयू में गिर गया। बहुत प्रयत्न करने पर भी न मिला। कुश को संदेह हुआ कि मेरा कंकड़ कुमुद नामक सर्प तो चुराकर नहीं ले गया। इसलिए उसने गरुड़ास्त्र का प्रयोग किया। जिसके भय से त्रस्त होकर कुमुद ने कुश को कुकड़ लौटा दिया और साथ ही अपनी कन्या कुमुद्वती का परिणय कुश के साथ कर दिया। कुश को अतिथि नामक पुत्र हुआ। कुश के बाद अतिथि अयोध्या के सिंहासन पर बैठा। उसने दिन रात का विभाग करके अपने कर्तव्य का अच्छी तरह पालन किया। रूप, यौवन, सम्पत्ति और अधिकार के अनुकूल होने पर भी राजा अतिथि में अहंकार का लेश भी नहीं था। राजनीति के अनुसार ही उसका व्यवहार रहा। (सर्ग 17)

अठारहवें सर्ग में 21 राजाओं का वर्णन है जिनमें से 20 राजाओं का वर्णन करने में कवि ने प्रत्येक के लिए एक या दो श्लोकों से काम लिया है। अन्तिम राजा सुदर्शन बाल्यावस्था में ही राजगद्दी पर बैठा। उसने मन्त्रियों की सहायता से राज्य शासन की जो उत्तम व्यवस्था की उसका वर्णन इस सर्ग के अन्त में किया गया है।

उन्नीसवें सर्ग में सुदर्शन के पुत्र अग्निवर्ण का चरित्र वर्णन किया गया है। उसके पिता ने शत्रुओं का समूल नाश कर दिया था और राज्य की व्यवस्था उत्तम थी, इसलिए अग्निवर्ण को कुछ नहीं करना पड़ा। कुछ दिन तक तो उसने राज्य व्यवस्था की ओर ध्यान दिया किन्तु विलासी होने के कारण राज्य का भार मन्त्रियों को सौंपकर स्वयं पूर्णरूप से विषयों व भोग में निमग्न हो गया। वह दिन रात अन्तःपुर में विहार करता था। उसे प्रजा की जरा भी चिन्ता न थी। एक दिन मन्त्रियों के अत्यन्त आग्रह से लम्पट राजा ने अन्तःपुर की खिड़की से केवल अपना एक पैर बाहर निकालकर प्रजा को दर्शन दिया। इस विषयासक्त और व्यसनी राजा का वर्णन

पढ़कर मन में घृणा उत्पन्न होती है। फिर भी कवि के उस वर्णन नैपुण्य पर हमें आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। अग्निवर्ण स्वयं अत्यन्त ऊंचे दर्जे का ललितकलाकोविद था। वह नर्तकियों के नृत्य के समय स्वयं मृदंग बजाता था और उसके नृत्य में दोष दिखलाकर उसे लज्जित कर देता था। अन्तःपुर की ललनायें उसकी वासना को तृप्त करने के लिए पर्याप्त नहीं थीं। अतएव उसकी दृष्टि से सुन्दर दासियां और वेश्याएं भी नहीं बचती थीं। अति स्त्रीप्रसंग और सुरापान से उसका शरीर दुर्बल और व्याधिग्रस्त हो गया। वैद्यों के उपदेश देने पर भी वह दुर्व्यसनों से निवृत्त न हुआ। बहुत दिन तक राजा का दर्शन न होने के कारण प्रजा को उसके विषय में चिन्ता हुई। तथापि अग्निवर्ण क्षय रोग का शिकार बना, यह बात मंत्रियों ने गुप्त रखी। उसकी मृत्यु होने पर उसकी गर्भवती रानी को सिंहासन पर बैठाया। रानी ने राज्य व्यवस्था सरलता से चलाई।

रघुवंश के उन्नीसवें सर्ग का अन्त आकस्मिक हुआ है। किसी पण्डित ने कुछ वर्षों पूर्व धारा नगरी में रघुवंश के 27 सर्ग होने की सूचना दी थी। स्वर्गवासी राय बहादुर शंकर पाण्डुरंग पण्डित ने भी सुना था कि उज्जयिनी में 20 से 25 सर्ग विद्यमान हैं। अब तक इन अवशिष्ट सर्गों का पता न लगने के कारण यह बात विश्वसनीय नहीं है। कवि ने उन्नीस सर्ग के आगे रचना नहीं की इसका कारण उसकी अस्वस्थता या मृत्यु हो सकती है। कारण कुछ भी क्यों न हो, कुमार सम्भव की तरह यह काव्य भी कवि ने अपूर्ण ही छोड़ दिया। विष्णु पुराण में राजा अग्निवर्ण के पश्चात् और भी आठ राजाओं का वर्णन आया है।

रघुवंश संस्कृत साहित्य जगत् की अनुपम निधि है। इसकी भाषा अत्यन्त प्रवाहशील, सरस तथा सहजबोध गम्य है। जिससे साधारण संस्कृत जानने वाले आबालवृद्ध इसका रसास्वादन कर सकते हैं। कुमार संभव और मेघदूत ये दोनों पूर्ववर्ती काव्य अधिक मर्यादित और सुगठित हैं। कुमार संभव में केवल भगवान् शंकर के चरित्र की एक विशिष्ट घटनाक्रम का वर्णन किया गया है। उसी प्रकार मेघदूत में केवल एक विरही नायक और उसकी नायिका का वर्णन किया गया है। दोनों काव्य सुगठित हैं। किन्तु रघुवंश की रचना अन्य प्रकार से की गयी है। इसमें 29 राजाओं का वर्णन है। इस राजवंशावली में वर्णित राजागण सामान्यतया सभी शूर, न्यायी, संयमी, विद्वान तथा दानशील थे। तब भी उनके चरित्रों में जो भिन्न-भिन्न प्रसंगों का

वर्णन है। उनमें एक सुत्रता और प्रमाणबद्धता नहीं रह सकी। तथापि कई अन्य दृष्टिकोणों से 'रघुवंश' कालिदास के अन्य काव्यों की अपेक्षा अधिक सरस महाकाव्य है। कुमार सम्भव और मेघदूत के नायक देवता जाति के हैं। उनके विचारों तथा विकारों में पाठकों के मन में आत्मीयता का भाव उदय नहीं होता है। यद्यपि रघुवंश में कई स्थलों में अपूर्वता दिखाई देती है, तो भी इस काव्य के पात्र इसी भूमि के निवासी थे। उनके चरित्र उदान्त होने पर भी अद्भुत और अतिमानुष नहीं है। इसलिए पाठकों का उनके प्रति कुतुहल, आदर और सहानुभूति उत्पन्न होती है। इस काव्य की रचना में भी कवि की कल्पना का विलास दृष्टिगोचर होता है। दिलीप से लेकर दशरथ तक रघुवंश में वर्णित राजाओं में हर एक किसी एक गुण में अद्वितीय था। राजा दिलीप भक्तिमान, रघु दानवीर और सर्वस्वत्यागी, अज उच्चकोटि का प्रेमी तथा दशरथ राज गुण सम्पन्न थे। परन्तु राम के स्वभाव में इन सबों का मिश्रण था। राम के चरित्र में सीता के साथ जो अन्याय हुआ उससे अथवा किसी दूसरे कारण से राम के बाद रघुवंश का ऐश्वर्य हतप्रभ हो चला था। राज व्यवस्था शिथिल हो चुकी थी। प्रथम एक दो पीड़ियों तक कुश और अतिथि इन दो राजाओं के समय में पूर्वपुण्य के प्रभाव से अथवा उन राजाओं के कुछ उत्कृष्ट वैयक्तिक गुणों के कारण तेजी से अवनति न हो सकी। फिर भी अवनति प्रतिदिन होती ही गई। राजा अतिथि के पश्चात् इक्कीस राजा हुए। उनके चरित्र में वर्णन योग्य एक भी प्रसंग कवि को दिखाई नहीं पड़ा। तदुपरान्त सिंहासनारूढ़ अग्निवर्ण ने दिन-रात विषयोपभोगों में मग्न होकर अपनी पूर्वजों की धवल कीर्ति को कलंकित किया। एक तरफ तो प्रजा के संरक्षण, पोषण तथा शिक्षण में सदा सर्वदा पिता समान सतर्क होकर दत्तचित्त रहने वाला दिलीप और दूसरी ओर अहर्निश अन्तःपुर में पड़े रहकर विलासिता और लम्पटता में आकण्ठमग्न और मंत्रियों की प्रेरणा से खिड़की की राह से सिर्फ एक दिन अपने पैर निकालकर दर्शनोत्सुक प्रजा से "इन्हीं को देखकर सन्तोष कर लो" कहने वाला राजा अग्निवर्ण, इन दोनों चरित्र में पाठकों को आकाश पाताल का अन्तर शीघ्र ही ज्ञात हो जाता है। कवि ने दोनों का चरित्र समान कौशल से चित्रित किया है। तो भी वह समाज के आगे कौन आदर्श उपस्थित करना चाहता था यह समझ लेना कठिन नहीं।

इस पोषण की दृष्टि से रघुवंश महाकाव्य उत्तम है। यहां राजा अग्निवर्ण के विलासवर्णन में श्रंगार, रघु, अज और राम के युद्ध प्रसंगों में वीर, अज विलाप में

करुण, वशिष्ठ और वाल्मीकि के आश्रम तथा सर्वस्वत्यागी रघु के वर्णन में शान्त रस की प्रमुखता हुई है। ताड़का वध प्रसंग में वीभत्स की भी झलक मिलती है। कवि की भाषा सर्वत्र मधुर तथा प्रासादिक है। जहां तहां उपमा, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, आदि अर्थालंकार नग की तरह जड़ दिये गये हैं। कालिदास ने शब्दालंकारों पर ज्यादा जोर नहीं दिया है। तथापि नवम सर्ग में ग्रीष्म ऋतु और दशरथ आखेट का वर्णन करते समय “यम्पवतामवतां च धुरि स्थितः” रणरेणवो रुरुधिरे रूधिरेण सुरद्विषाम् इत्यादि स्थानों में यमक और अनुप्रासों का उपयोग करने की लालसा कवि ने पूरी कर दी है। कवि ने अलंकारों और वर्णनों का अधिक विस्तार न होने देने का भी ध्यान रखा है। सर्वत्र वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ पर अधिक जोर दिया गया है। वृत्तों का यथोचित उपयोग किया गया है। रचना, सुबोध तथा अतिरमणीय, भावतरंग मधुर और सृष्टिवर्णन मनोहर होने के कारण रघुवंश महाकाव्य संस्कृत साहित्य की देदीप्यमान नक्षत्र और अद्वितीय सर्वांग सुन्दर काव्य माना जाता है।

—00—

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- | | | |
|----|---------------------|-----------------------------------|
| 1. | रघुवंश महाकाव्यम् | चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी |
| 2. | कुमार सम्भवम् | चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी |
| 3. | मेघदूतम् | चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी |
| 4. | अभिज्ञान शाकुन्तलम् | चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी |
| 5. | विक्रमोर्वशीयम् | चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी |
| 6. | मालविकाग्नि वित्रम् | चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी |
| 7. | ऋतुसंहारम् | चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी |
| 8. | कालिदास ग्रन्थावली | चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी |
| 9. | कालिदास | बम्बई प्रकाशन, बम्बई |